हिन्दी और मलयालम के समस्या नाटक - तुलनात्मक अध्ययन

HINDI AUR MALAYALAM KE SAMASYA NATAK - THULANATMAK ADHYAYAN

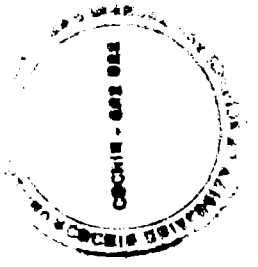

Thesis submitted to
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
for the award of the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

AMALAKUMARY. B.

Prof. (Dr.) A. ARAVINDAKSHAN
Head of the Department

Prof. (Dr.) P.A. SHEMIM ALIYAR
Supervising Teacher

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI - 682 022

2002

Certificate

This is to certify that this thesis is a bonafide record of work carried out by **Smt. Amalakumary. B**, under my supervision for Ph.D and no part of this thesis has hitherto been submitted for a degree in any university.

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Cochin - 682 022

Prof. (Dr.) P.A. Shemim Aliyar
Supervising Teacher

19.12.2002

DECLARATION

I hereby declare that this thesis entitled **"HINDI AUR MALAYALAM KE SAMASYA NATAK - THULANATMAK ADHYAYAN"** has not previously formed the basis of any degree, diploma, associateship, fellowship or other similar title recognition

AMALAKUMARY. B.

Department of Hindi,
Cochin University of Science and Technology,
Kochi - 682 022.

19.12.2002

भूमिका

साहित्य की हर विधा में समय समय पर विशिष्ट नाम से विशिष्ट धारा जन्म लेती है, हर धारा चलती है, कुछ काल तक रहती है और फिर समाप्त हो जाती है। हिन्दी और मलयालम नाट्य साहित्य में समस्या नाटक नामक नाट्यधारा विकसित हुई, कुछ अवधि तक बहती रही, फिर धीरे धीरे सूख गयी। हिन्दी के समस्या नाटकों को लेकर शोधकार्य हो चुके है, आलोचनात्मक ग्रन्थ भी निकले। हिन्दी और मलयालम के नाटक साहित्य पर तुलनात्मक अध्ययन भी हुआ है। किन्तु जहाँ तक मेरी जानकारी है, एक विशिष्ट नाट्यधारा के रूप में हिन्दी और मलयालम के समस्या नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन अभी तक नहीं हुआ है। तुलनात्मक अध्ययन पर काफी दिलचस्पी रखने के कारण मैं ने शोध केलिए प्रस्तुत विषय का चयन किया। तुलनात्मक अध्ययन का मकसद दो भाषाओं और उसके साहित्य की समानताओं और विषमताओं पर प्रकाश डालना मात्र नहीं बल्कि अलग अलग प्रान्त या क्षेत्र या देश की अस्मिता और संस्कृति के साम्य वैषम्य को उजागर करना भी है।

मैं ने इस शोध प्रबन्ध को पाँच अध्यायों में विभक्त किया है। पहला अध्याय है- समस्या नाटक सैद्धान्तिक विश्लेषण। इसमें यथार्थवाद के प्रेरक तत्व, उसके भेद, समस्या नाटक की सृजन संबन्धी प्रेरणाएँ और समस्या नाटकों का उन्नायक इब्सन तथा उनके नाटक आदि पर विचार किया गया है। दूसरा अध्याय है हिन्दी और मलयालम के समस्या नाटक - उत्स और प्रसार। समस्या नाटकों की उत्पत्ति और प्रमुख समस्या नाटककारों के प्रमुख नाटकों का अध्ययन इस अध्याय में हुआ है। तीसरा अध्याय है हिन्दी और मलयालम के समस्या नाटकों में अभिव्यक्त समस्याओं की प्रकृति - एक तुलनात्मक अध्ययन। इसमें विभिन्न समस्याओं के स्वरूप के आधार पर नाटकों का विश्लेषण एवं

तुलना की गयी है। चौथा अध्याय है हिन्दी और मलयालम समस्या नाटकों का शिल्पविधान - तुलनात्मक अध्ययन। इस अध्याय में दोनों भाषाओं के नाटकों का शिल्पगत दृष्टि से विश्लेषण किया गया है। पाँचवाँ तथा अन्तिम अध्याय है, हिन्दी और मलयालम के समस्या नाटक - उपलब्धियाँ और सीमाएँ। इसमें हिन्दी और मलयालम समस्या नाटकों का एक नवीन नाट्य विधा के तौरपर मूल्यांकन किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध हिन्दी विभाग के प्रोफसर डॉ. पी.ए. शमीम अलियारजी के कुशल निर्देशन में संपन्न हुआ है। उनके प्रति मेरी भावना को शब्दबद्ध करना मेरे बस की बात नहीं। आशा है कि वे मेरी यह विवशता समझ पायेगी। विषय विशेषज्ञ डॉ. एम. षण्मुखनजी से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध तैयार करने की दिशा एवं दृष्टि मुझे मिली है। अस्तु मैं उनका एहसानमंद हूँ। विभाग अध्यक्ष डॉ. ए. अरविन्दाक्षन और मेरे अन्य गुरुजनों के प्रति मैं आभारी हूँ जिन्होंने मुझे प्रेरणा एवं आशीर्वाद दिये है।

अपने प्रिय मित्रों और परिवारवालों का मैं तहे दिल से शुक्रिया अदा करती हूँ जिन्होंने मेरी सहायता की है, मुझे प्रेरणा प्रदान की है।

हिन्दी विभाग, कोचिन विश्वविद्यालय, स्कूल ऑफ ड्रामा, तृश्शूर, केरला साहित्य अकादमी, तृश्शूर तथा केरल विश्वविद्यालय, तिरुवनन्तपुरम के पुस्तकालयों के कर्मचारियों के प्रति भी मैं आभार प्रकट करती हूँ। इस शोध प्रबन्ध के साथ मैं ने पूरी वफादारी निभायी है, फिर भी कोई त्रुटि आई है तो क्षमाप्रार्थी हूँ।

अमलाकुमारी बी.

19.12.2002

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

भूमिका

अध्याय १

समस्या नाटक - सैद्धान्तिक विश्लेषण 1 - 19

यथार्थवाद के प्रेरक तत्व - यथार्थवाद के प्रकार प्रकृतवाद - सामाजिक यथार्थवाद - समस्या नाटक की सृजन संबन्धी प्रेरणाएँ - समस्या नाटकों के उन्नायक हेनरिक इब्सन - इब्सन के नाटकों का मूलस्वर - विश्व के विभिन्न देशों के रंगमंच पर इब्सन का प्रभाव।

अध्याय २

हिन्दी और मलयालम के समस्या नाटक - उत्स और प्रसार 20 - 140

हिन्दी के समस्या नाटकों का जन्म - प्रथम समस्या नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र - इनके नाटक - अन्य समस्या नाटककार - उदयशंकर भट्ट सेठ गोविन्ददास - पृथ्वीनाथ शर्मा - उपेन्द्रनाथ अश्क - विनोद रस्तोगी और रमेश मेहता के नाटक। मलयालम में समस्या नाटकों की आरंभिक कडी - वी.टी. भट्टर्तिरिप्पाड - एम. आर. भट्टर्तिरिप्पाड और एम.पी. भट्टतिरिप्पाड के नाटक - समस्या नाटकों का उद्भावक एन. कृष्णपिल्लै -उनके प्रमुख नाटक - अन्य नाटककार - सी.एन. श्रीकण्ठननायर - टी.एन. गोपिनाथन नायर - तिक्कोडियन - के.टी. मुहम्मद - के. सुरेन्द्रन और एन.एन. पिल्लै के नाटक।

अध्याय ३

हिन्दी और मलयालम समस्या नाटकों में अभिव्यक्त समस्याओं की प्रकृति - तुलनात्मक अध्ययन 141 - 153

परंपरावादी मूल्यों का खण्डन और पारिवारिक समस्याएँ - नारी चेतना की जागृति और उससे उपजी समस्याएँ - पर्रिस्थितियों के दबाव और व्यक्ति की प्रतिक्रिया - राजनीतिक समस्याएँ।

अध्याय ४

हिन्दी और मलयालम के समस्या नाटकों का शिल्पविधान - तुलनात्मक अध्ययन 154 - 184

वस्तुयोजना - अंक और दृश्य विधान - चरित्र चित्रण - वर्ग पात्र एवं व्यक्ति पात्र - चरित्रचित्रण में मनोवैज्ञानिक अन्वेषण - चरित्र चित्रण में संघर्ष तत्त्व - संवादयोजना - भाषिक संरचना - संकलनत्रय - यथार्थवादी रंगमंच

अध्याय ५

हिन्दी और मलयालम के समस्या नाटक - एक नवीन नाट्य विधा के तौर पर उपलब्धियाँ और सीमाएँ 185 - 193

पहला अध्याय

समस्या नाटक - सैद्धान्तिक विश्लेषण

अध्याय 1

समस्या नाटक - सैद्धान्तिक विश्लेषण

समस्या नाटक एक विशिष्ट नाट्य धारा है जिसका उदय और विकास पश्चिम में हुआ और उसकी मूलप्रेरणा एवं आधार यथार्थवाद और बुद्धिवाद है। यथार्थवाद विशिष्ट विचारधारा एवं विशिष्ट व्यंजना शैली का द्योतक है जो विशिष्ट काल की कला एवं साहित्य में प्रवेश कर गया। उसका उदय १९ वीं शती के उत्तरार्ध में हुआ था। तभी से यथार्थवाद की एक अविच्छिन्न धारा कालगति के क्रमिक विकास के साथ बहती चली जा रही है। यथार्थवाद कला और साहित्य में प्रकृति या वास्तविक जीवन से तद्रूपता रखनेवाला सिद्धान्त है जो आदर्शवादी न होकर वस्तु के विवरण और परिस्थिति का यथार्थ प्रतिनिधित्व करता है। बाहरी रूपों का सूक्ष्म निरीक्षण करते समय यथार्थवाद कल्पनापूर्ण आदर्शवादिता का बहिष्कार करते है। हिन्दी साहित्य कोश में बताया गया है ''यथार्थवादी कलाकार को अपनी कृति में जीवन की यथार्थरूप का अंकन करना चाहिए, यह दृष्टिकोण वस्तुतः आदर्शवाद का विरोधी माना जाता है।''[१]

यथार्थवाद के प्रेरक तत्व

१९ वीं शती के पूर्वार्द्ध के कई बुद्धिवादी आन्दोलन यथार्थवाद के प्रेरक बने। स्वच्छन्ततावादी विरुद्ध आन्दोलन, फ्रेंच दार्शनिक देकार्ते का बुद्धिवाद,

---

१. हिन्दी साहित्य कोश - पृ. ६६१

वैज्ञानिक विकास, फ्रांस की प्रथम क्रान्ति, अगस्तो कामट के दर्शन, काव्य समीक्षा का नया आयाम और अव्यावसायिक रंगशालाओं का उदय आदि इन प्रेरक तत्वों में प्रमुख है।

फ्रेंच के महान दार्शनिक देकार्ते[१] के बुद्धिवाद के प्रभाव से साहित्य में भावना तथा कल्पनाओं का स्थान नष्ट हो गया। बुद्धिवादियों ने साहित्य से भावुकता भगा दिया और यथार्थ की परख की प्रेरणा दी।

१८ वीं शती के उत्तरार्ध और १९ वीं शती के पूर्वार्द्ध में जीवन दर्शन में नैराश्य का प्रभुत्व स्थापित हो गया। साधारण जनता ने आशावादी दृष्टिकोण छोड दिया। विज्ञान के विकास के साथ जनता की मानसिक स्थिति बदल गयी। रचनाकारों ने भावना कल्पना तथा आदर्शवादिता को छोड दिया।

नयी वैज्ञानिक चेतना में डार्विन के विकासवाद[२] का प्रमुख स्थान है। उनकी रचना 'द ओरिजिन आफ स्पीषिस' ने आधुनिक यूरोप की नयी चेतना को प्रभावित किया। विकासवाद ने चर्च धर्म का विरोध किया। उसके अनुसार, परोक्ष सत्ता को छोडकर, दृश्य जगत के प्रमाणों के आधार पर यथार्थ का अन्वेषण करना ज़रूरी है। धार्मिक लोगों ने डार्विन का विरोध किया क्योंकि जीव-सृष्टि तथा ब्रह्म-विषयक विश्वासों का खण्डन उन्होंने किया। किन्तु जनता विकासवाद पर आकृष्ट हो गयी।

इसके बाद कार्ल मार्क्स१ के 'द कम्यूनिस्ट मैनिफेस्टो' (१८४८) और 'दस केपिटल' (१८६७) के प्रकाशन हुए। इन्हीं रचनाओं ने आर्थिक, सामाजिक,

---

१. वैर्ल्ड लिटरेचर, बकनर बी ट्राविक - पृ. ६३

२. हिन्दी साहित्य कोश - पृ ७७१.

राजनीतिक और सांस्कृतिक चेतना में नयी क्रान्ति उत्पन्न कर दी। नियतिवाद का निषेध करनेवाला नया जीवन दर्शन पनपने लगा। इस भौतिकवादी विचारधारा के कारण वस्तु जगत की यथार्थता में जन साधारण का विश्वास बढने लगा।

इसके साथ साथ फ्रायड[१] के मनोवैज्ञानिक अन्वेषणों का भी प्रभाव समाज और साहित्य पर पडने लगा। फ्रायड ने स्वप्न एवं चेतन सुलभ अन्तश्चेतनावादी यथार्थ को प्रस्तुत किया और परंपरागत यौन नैतिकता एवं रुढियों पर प्रहार किया। अतः साहित्य में व्यक्तित्व विघटन की समस्याओं को प्रमुखता मिलने लगी।

१८ वीं शती में फ्रांस की प्रथम क्रान्ति के प्रभाव से जनतां की मानसिक स्थिति में बदलाव आया था। क्रान्ति ने सामन्तशाही तथा पादरियों के विरुद्ध आवाज़ उठायी और जनता की विचारभूमि को स्वतंत्र एवं विकसित करा दिया। फलस्वरूप साहित्य का स्तर भी ऊंचा उठा।

फ्रेंच दार्शनिक अगस्तो कामट[२] का दर्शन भी यथार्थवाद के प्रेरक तत्व है। उन्होंने समाज के वैज्ञानिक अध्ययन को महत्व दिया है। उस अध्ययन में यथार्थ की परख की प्रमुखता है।

साहित्य की नयी समीक्षा[३] पद्धति का भी यथार्थवाद के उदय में अपनी भूमिका निभाती है। १७ वीं और १८ वीं शती के सभी समीक्षकों ने अरस्तु के पोयटिक्स के आधार पर रचनाओं के मूल्यांकन किये। फ्रांस की प्रथम क्रान्ति के

---

१. हिन्दी के समस्या नाटक, मन्धाता ओझा - पृ. १८
२. मेरियम वेबस्टेर्स एनसैक्लोपीडिया ऑफ लिटरेचर - पृ. ९३३
३. नाटक और यथार्थवाद, कमलिनी मेहत्ता भूमिका - पृ. १३

बाद वैयक्तिक भावनाओं के विकास के कारण साहित्यकार की विचारधारा स्वतंत्र हो गयी और वे रुढ़िवादी समीक्षकों का निषेध करने लगे। साहित्य जगत में उच्छृंखलता और उद्दामवासनाओं के स्थान मिलने लगा। यह प्रवृत्ति यथार्थवाद के उदय का प्रेरक बनी। कारण यह है कि इन्हीं रचनाओं के नाट्यप्रदर्शन पर फ्रांस की सरकार ने प्रतिबंद्ध लगा दिया। उन्होंने नाट्यगृहों की संख्या कम कर दी। अतः अव्यावसायिक रंगशालाओं३ की स्थापना और वैज्ञानिक रंग प्रयोगों की अवधारणा हुई। और नाट्यजगत पर यथार्थवाद का उदय भी हुआ।

यथार्थवाद के उदय के मूल में प्रकृतवाद का भी स्थान है। फ्रेंच उपन्यासकार एमिली ज़ोला ने प्रकृतवाद की स्थापना की। उन्होंने स्वच्छन्दतावाद का विरोध किया और माना कि मानव की आधुनिक प्रवृत्तियाँ यथार्थ स्थिति एवं यथार्थत्व की ओर अधिक उन्मुख है। अब मानव स्वच्छन्दतावाद के काल्पनिक स्वप्नों को अप्राकृतिक समझकर जीवन की वास्तविक विभीषिका याने अनैतिकता की समस्याओं के समाधान करने का प्रयास करते है। अतः कलाकार को भी जनता की भीषण परिस्थितियों और उनकी आवश्यकताओं का निरीक्षण एवं परिक्षण करना चाहिए। उसे यह जानना ज़रूरी है कि स्वच्छन्दतावाद की कथावस्तु और भाषा-शैली आधुनिक युग में वांछनीय नहीं। जब स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन प्राचीनता का विरोध करके हुए उभर आया तो वह भी नवीन लगता था। किन्तु समय बदलने पर वह अव्यवहार्य सिद्ध हो गया। ''जिस रुढ़िवाद का विरोध करने की इसने घोषणा की थी, प्रकृति के प्रभाव से अचल हिमाचल पूर्ववत् बना रहा और उसके चतुर्दिक यथार्थवाद का मेघ मंड़राने लगा।''[१]

---

१. हिन्दी नाटक उद्‌भव और विकास, डॉ. दशरथ ओझा - पृ. २७१

नाटक साहित्य में यथार्थवाद का जन्म १९ वीं शती में हुआ। वह यथार्थ जीवन से तद्रुप नाटकीय अभिव्यक्ति पर महत्व देने लगा। इस आन्दोलन के प्रमुख प्रवर्तक नार्वे के हेनरिक इब्सन था। ''इन्होंने और अन्य नाटककारों ने सुगठित नाटकों के संकीर्ण तथा कृत्रिम कथानकों का विरोध किया और उसके बदले में समकालीन समाज की स्थिति और विचार संघर्षों को विषय बनाये।''[१]

अपने पारिभाषिक अर्थ में यथार्थवाद जीवन की समग्र परिस्थितियों के प्रति ईमानदारी का दावा करते हुए, मनुष्य की हीनताओं तथा कुरूपताओं का चित्रण करता है। यथार्थवाद जीवन के गूढ रहस्यों को खोलता और उसके असुन्दर अंशों का भी चित्रण देता है।

यथार्थवाद के प्रकार

प्रकृतवाद

यह अंग्रेज़ी शब्द 'नेचुरलिसम' का हिन्दी प्रयोग है। प्रकृतवाद फ्रांस में विकसित हुआ। इसे यथार्थवाद की एक महत्वपूर्ण शाखा मानी जाती है। फ्रेंच यथार्थवाद का विकसित रूप ही प्रकृतवाद है। इसका उदय १९ वीं शती के उत्तरार्ध और २० वीं शती के पूर्वार्द्ध में हुआ। इसके प्रमुख प्रवर्तक फ्रेंच उपन्यासकार एमिली ज़ोला है। प्रकृतवाद शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ज़ोला ने ही किया था।[२]

---

१. मेरियम वेबस्टेर्स एनसैक्लोपीडिया ऑफ लिटरेचर - पृ. ९३३
These and other play wrights rejected the complex and artificial plotting of the so called well made play, instead treat the thems and conflicts of contemparory society.

२. हिन्दी साहित्य कोश - पृ. ५४०

प्रकृतवाद के व्यापक दृष्टिकोण के अनुसार मानवीय मस्तिष्क की समस्त प्रक्रियाएँ इनद्रियजन्य है। अतः प्रकृतवादी विचारधारा में अध्यात्म केलिए कोई स्थान नहीं है। सभी प्रवृक्तियाँ इन्द्रियजन्य है। ''वास्तव में प्राचीन दर्शन में प्रकृतवाद, भौतिकवाद, सुखवाद और किसी भी अनात्मवाद को सूचित करने केलिए प्रयुक्त होता था।''[१] साहित्य में इसका प्रयोग कलात्मक ईमानदारी का प्रतीक माने जाते है। प्रकृतवादी कलाकार स्वच्छन्द भाव से अपनी अनुभूतियों तथा विश्वासों को अभिव्यक्त करते है।

प्रकृतवाद मानव जीवन और चारित्रिक विश्स में अनुवंशिकता और परिस्थिति को महत्व देता है। इसमें कलाकार के ध्यान में आनेवाली सभी वस्तुओं के चित्रण प्रकृति के अनुरूप होता है। प्रकृतवादी आन्दोलन प्रायः से १८१० चलता ही रहा, इसके बाद फ्रेंच कथा साहित्य में किसी न किसी रूप में उसकी अभिव्यक्ति भी होती रही। एमिली ज़ोला के निबन्ध 'ले रोमन एक्सपरिमेन्टल' (1880 The experimental Novel) विद्यालयों के साहित्यिक घोषणापत्र रहे। ज़ोला के आदर्श के साथ प्रकृतवादी शैली व्याप्त हो गयी और उसने प्रमुख लेखकों को प्रभावित भी किया। ''प्रसिद्ध आधुनिक फ्रेंच लेखक जान पॉल सार्त्र की कृतियों में प्रकृतवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है।''[२]

फ्रेंच प्रकृतवाद के साथ ही यूरोपीय साहित्य में जर्मन प्रमुतवाद का भी विशिष्ट स्थान है। जर्मनी में प्राय। १८८० से इस विचारधारा का प्रभाव पडना आरंभ हुआ। वहाँ यह आन्दोलन मुख्यतः एमिली ज़ोला के समर्थन, विरोध,

---

१. नाचुरलिसम, लिलियन. आर. फर्स और पीटर एनस्क्रैन - पृ. २
Originally 'naturalism' was used in ancient philosophy to denote materialism, epicurealism, or any seculirism.

२. हिन्दी साहित्य कोश - पृ. ५४०

अथवा व्याख्या को लेकर ही उदित हुआ। इसके उपरान्त परंपरागत जर्मन साहित्य के विरोध के रूप में भी प्रकृतवादी विचारधारा का समर्थन किया गया।

प्रकृतवादी लेखक पात्रों के नैतिक और बौद्धिक गुणों की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक स्वरूप पर बल देते हैं। पात्र अन्दर से मज़बूत सहज प्रेरणाओं से ओत-प्रोत हैं और बाहर से सामाजिक तथा आर्थिक दबावों से उत्पीडित भी है। प्रकृतवाद वास्तविकता का विश्वसनीय प्रतिनिधित्व करता है।

वास्तविकता को पूर्णता देने का दावा देते हुए भी प्रकृतवादी लेखक कुछ पूर्वग्रहों से अवरुद्ध हैं। उन्होंने ललित पात्रों का चित्रण किया जो बलवती मौलिक मनोविकारों से ऊपर उठते हैं और उत्पीडनकारी परिस्थितियों से ग्रसित हैं। ये कभी कभी स्फूर्तिविहीन और कुत्सित विवरण होते हैं। प्रकृतवाद वैज्ञानिक जान पडता है और वह रोमान्टिसिसम का विरोधी भी है। औद्योगीकरण के परिणामों को देखते हुए भी प्रकृतवाद, वैज्ञानिक विकास की सहायता से दुनिया के विकास का सपना देखता रहा।

सामाजिक यथार्थवाद

यह प्रकृतवाद के समान न तो नियतिवादी है, न निराशावादी है और न नैतिकता निरपेक्ष है। सामाजिक यथार्थवाद की मान्यता है कि साहित्य में प्रत्येक स्थिति को दूसरी स्थिति का अवश्यंभावी परिणाम होना चाहिए। चरित्र वही करे जो उसकी स्थिति के तर्क से अवश्यभावी हो। प्रकृतवादी साहित्य व्यक्ति का नहीं औसत का चित्रण करता है। सामाजिक यथार्थवाद, समाज के अभिन्न अंग-भूत व्यक्ति का चित्रण करता है। वह वस्तुतः व्यक्तिगत पक्ष के साथ साथ सामाजिक पक्ष का उद्‌घाटन करता है।

सामाजिक यथार्थवाद १९३२ से १९८० तक सोवियट संघ में प्रचलित कला संबन्धी सिद्धान्त तथा शैली है जिसमें साहित्यिक संरचना भी संलग्न है। उस समय सोवियत संघ विकसित होनेवाला एक सामाजवादी देश था। मार्क्सवादी सिद्धान्तों के अनुसार सामाजिक यथार्थवाद के प्राथमिक तत्व सामाजवाद और एक वर्गहीन समाज के निर्माण के लिए संघर्ष है। सामाजिक यथार्थवाद के अपेक्षित गुण वह सामाजिक उत्तरदायित्व है जो श्रमिक वर्ग की अभिलाषाओं का चित्रण करना और सभी को काम की अधिकार प्राप्ति देना है। यही मार्क्सवाद का भी दावा है। ''प्रसिद्ध आलोचक लूकास मानता है कि यथार्थ का वास्तविक चित्रण करनेवाला अन्य कोई भी सौन्दर्यशास्त्र नहीं है, जिसका मार्क्सवाद में प्रमुख स्थान है।''[१]

सामाजिक यथार्थवाद के विकास में मार्क्सवाद का बहुत बडा हाथ रहा है। अतः उसे राजनीतिक भी कहा जा सकता है। माक्सिम गोर्की और आन्टणी चेखव सामाजिक यथार्थवाद के प्रमुख प्रवर्तक रहे। १९८० के बाद सोवियत संघ में समाजवाद तथा मार्क्सवाद के प्रति जो मज़बूत प्रतिबद्धता थी उसका ह्रास हो गया। उसके साथ सामाजिक यथार्थवाद का महत्व भी गिरने लगा।

समस्या नाटक की सृजन संबन्धी प्रेरणाएँ

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में यूरोप की स्थिति संक्रमणकालीन थी। नये युग के जनतंत्रवाद मानवतावाद समाजवाद एवं राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विचारधारा के प्रभाव से जनजीवन क्रान्ति की ओर मुडने लगा। पुरानी

---

१. रियलिज़म डामियन ग्रान्ट - पृ. ७८
Lukaes claims that in no other aesthetics does the truth ful depiction of reality have so central a place as in marxism.

और नयी विचारधाराओं के संघर्ष के कारण सामाजिक जीवन में अनेक समस्याएँ उत्पन्न होने लगी। यह सामाजिक स्थिति ही वास्तव में समस्या नाटकों का उपजीव्य है। परंपरावादी सामाजिक व्यवस्था की विषमताओं का विश्लेषण करना उसका लक्ष्य रहा। इसमें मानव संबन्धों पुरुष-स्त्री, पति-पत्नी, पिता-पुत्र, व्यक्ति-समाज विभिन्न सामाजिक संस्थानों की पारस्परिकता की नये सिरे से व्याख्या करने लगी।

इसी परिस्थितियों में जनता अपने को कई बन्धनों में जकडी हुई समझने लगी। नाट्यरचना की प्रचलित मान्यताएँ असमीचीन ज्ञात हुई। वे नयी चेतना के अनुरूप नहीं थे। आधुनिक प्रेक्षक का दृष्टिकोण यथार्थोन्मुखी और बौद्धिक हो गया। अतः नाटक को युगानुरूप यथार्थवादी रंगमंच पर अवतारित करने की नयी विधियों का आविष्कार करने लगा। ग्रीन के प्रोत्साहन से १८९१ में लन्दन में 'इंटिपेन्डन्ड थियटर सोसाइटी'[१] की स्थापना हुई। रूस में 'मास्को आर्ट थियटर' की भी स्थापना हुई। इन नवीन रंगशालाओं ने नये विचारवाले नाटकों के प्रदर्शन किये और दुनिया के प्रमुख नाटककार उनसे प्रभावित भी हुए।

इंडिपेन्डन्ड थियटर समस्या नाटकों के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखनेवाला है। यह एलिज़बेतन स्टेज केलिए एक चुनौती था। उस समय पाश्चात्य जगत में जीवन संबन्धी नया दृष्टिकोण उत्पन्न हो गया। १९ वीं शती के उत्तरार्द्ध तक आर्थिक भौतिक विकासों के कारण पाश्चात्य जीवन में उलझनें आ गये। उस समय नाटककार सम सामयिक सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की आलोचना प्रस्तुत करने लगा। इसके फलस्वरूप समस्याओं पर

---

१. वेर्ल्ड ड्रामा, निक्कल - पृ. ५२३

आधारित विचारात्मक नाटकों का प्रस्तुतीकरण होने लगा। वैज्ञानिक विकास ने जनता को बौद्धिक बना दिया और जनता रोमानी नाटकों को ठुकराने लगी। काल्पनिकता और भावुकता की महत्व कम होने लगा। नाटककार नयी भावनाओं और नवीन प्रयोगों को अपनाने लगे। फ्रांस में एक विशिष्ट प्रकार के नाटक लिखे जाने लगे उनके नाम थे 'वेलमेड प्लेज़' (wellmade plays) सुगठित नाटक। इनमें क्रिया व्यापार और परिस्थिति प्रमुख थे, पात्र और संवादों का महत्व नहीं ते। इस तरह के नाटकों में ड्यूमाफिल के नाटकों का प्रमुख स्थान हैं।

यथार्थ पर सोचते वक्त साहित्यकार ने जीवन की विभिन्न समस्याओं की पहचान और परख की। ये समस्याएं राजनीतिक, सामाजिक, पारिवारिक और वैयक्तिक थी। बुद्धिवादी नाट्यपरंपरा के अंर्तगत एक विशेष प्रकार के नाटक का जन्म हुआ, जिसमें किसी समस्या का वाद विवाद रूप में विश्लेषण होता है। उन्हें समस्या नाटक नाम दिया गया।

समस्या नाटकों में साधारण जीवन की समस्याओं का यथार्थ चित्रण होते है और वे समसामयिक भी ज़रूर होते हैं। समस्या नाटक संबन्धी यह कथन यहाँ विचारणीय है ''समस्या नाटक वे नाटक हैं जिनमें युग - जीवन को चिंतित करनेवाली किसी एक समस्या पर विचार किया जाता है।''[१]

हिन्दी के प्रमुख लेखकों ने भी समस्या नाटक की परिभाषा दी हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने कहा हैं कि ''ऐसे नाटकों का उद्देश्य होता है समाज का अधिकतर जैसा है वैसा ही सामने रखना। उसके भीतर की नाना विषमताओं से

---

१. अंडरस्टाटिंग ड्रामा विल्यम ब्रूक -पृ. २५६
Problem plays are plays that focus attention on some particular problems which especially concern the society of the time.

उत्पन्न प्रश्नों का जीता जागता रूप खडा करना तथा यदि संभव हो तो समस्या के स्वरूप का भी आभास देना।''[१] समस्या नाटककार सत्य का अन्वेषी हैं और वे रूढियों का विरोध भी करते हैं। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार ''अनेक आकर्षक रुढ़ियों के भीतर सत्य का रूप छिप गया है। समस्या नाटक रुढ़ि के पर्दे को फाडकर उसे दिखलाने का प्रयत्न करता है।'[२] आगे हम समस्या नाटकों के उद्‌भावक हेनरिक इब्सन पर विचार करेंगे।

हेनारिक इब्सन

नार्वे के प्रमुख नाटककार इब्सन को समस्या नाटकों का जन्मदाता माना गया है। उनका रचनाकाल १८५८-१८९९ तक था। उनके प्रारंभिक नाटक ऐतिहासिक थे। वास्तव में ऐतिहासिक नाटक यथार्थवादी साहित्य है क्योंकि वे तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक घटनाओं का उल्लेख करते हैं। अतः इब्सन ने यथार्थवाद की नींव ऐतिहासिक धरा पर डाली है।

इन्सान ने अपने पात्रों के सुख-दुःख की वास्तविक प्रस्तुति करके, प्रेम, घृणा तथा चेतनावचेतन का चित्रण किया है। बौद्धिक कल्पना और इन्द्रिय प्रदर्शन के बीच उसने उत्कृष्ट सन्तुलन बनाया रखा। सामयिक सामाजिक दोषों का स्पष्ट प्रस्तुतीकरण इब्सन ने किया। उसने जीवन को नीरस अथवा निस्सहाय नहीं माना। विषय सुख की आसक्ति के कारण नार्वे की जनता पतन के गर्त में थी। किन्तु इब्सन ने रोमांसवाले सद्‌गुण संपन्न नायक नायिका का तिरस्कार करके साहित्यिक जगत में नयी क्रान्ति उत्पन्न कर दी। उनका विषय

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, राम चन्द्र शुक्ल - पृ. ४८१

२. आधुनिक हिन्दी नाटक, डॉ. नगेन्द्र - पृ. ५६

सुसंस्कृत एवं सभ्य समाज था। उनके अनुसार जीवन न तो केवल विषादपूर्ण है, और न आनन्दपूर्ण। रुढ़िवाद की गुलामी ने मानव को सभी पीडाएँ दी है।

इब्सन के पात्र स्वाभाविक एवं संवेदनशील हैं और इब्सान के चित्रण में सत्य का प्रतिपादन भी है। उनके पात्र बहुत ही आकर्षक हैं। चमत्कारपूर्ण कथानक, विकासोन्मुख पात्र प्रभावशाली कथोपकथन आदि इब्सन की विशेषताएँ हैं। इब्सन की रचना उसकी अनुभूति है। उसने कहा है ''मैं ने जो कुछ लिखा है वह अनुभव किया है। कम से कम दूसरों के अनुभव को देखा है और इसलिए अपनी प्रत्येक कविता और नाटक में मैं ने आत्मिक शुद्धि तथा स्वतंत्रता का प्रयास किया है।'[१] उन्होंने साधारण मानव की दैनिक समस्याओं की प्रस्तुति की। अतः ये समस्याएँ सिर्फ नार्वे की नहीं, बल्कि सार्वकालिक और सार्वजनिक हैं। महान कलाकार का कर्तव्य है कि अपने देश की समस्याओं के चित्रण के माध्यम से विश्वव्यापी समस्याओं को उठाकर हल करने की चेष्टा करें। इस दृष्टि से देखे तो इब्सन महान कलाकार है।

आलोचकों के मत में इब्सन में दो प्रकार के व्यक्तित्व निहित हैं, बाह्य ओर आन्तरिक। बाल्यावस्था से जिस समाज ने उसका तिरस्कार किया उसके सामने प्रतिष्ठा पाने केलिए इब्सन का बाहरी व्यक्तित्व चाहता रहा। इब्सन ने जानबूझकर इस नकाब के पीछे अपने को छिपाया रखा। मगर उसका आन्तरिक व्यक्तित्व उनकी कृतियों के भावाशिल्प से प्रभावित था और क्रान्तिकारी जीवन बितानेवाला था। बाहरी जीवन में उन्हें जिन आशा आकांक्षाओं की सफलता प्राप्त न हुई, उसकी पूर्ती उसने अपनी रचनाओं के माध्यम से की। इब्सन के

---

१. रियलिसम इन ड्रामा, एच.के. डेविस द्वारा उत्रद - पृ. ११३

नाटकों में कला और जीवन के बीच के बुनियादी संघर्ष का चित्रण भिन्न रूपों में हुए हैं। जीवन के अनुभवों के प्रति अपनी प्रतिक्रिया एवं प्रतिहिंसा व्यक्त करने के लिए उसने अपनी रचनाओं को माध्यम बनाया।

इब्सन के नाटकों के मुख्य विषय थे, पारिवारिक असन्तुलन, विवाह, माता-पिता तथा बच्चों के संबन्ध, परंपरा व्यक्ति और परिवार के बीच का संघर्ष और अवैद्य सन्तानों की समस्याएँ। इब्सन के परिवारिक जीवन की झलक उसके नाटकों में है। उसकी माँ और पत्नी की छाया उसके पात्रों में हैं। अपने दुःखमय जीवन की भग्न अभिलाषाओं और अनमेल प्रणय संबन्धों की वेदना उसके नाटकों में प्रतिबिंबित हैं।

जीवन के अनुभवों से जिन भावांशों को अपनाया है, उन्हें किसी एकान्त एवं आन्तरिक स्थल के विद्रोह की आग में सुलगकर इब्सन ने नाटक लिखा। समाज के छलकपटों से विरोध और अप्राप्य क्रान्तिकारी भावनाओं की अभिलाषा ये दोनों उसकेलिए सहायक बने। 'थियटर ऑफ रिवोल्ट' ''ग्रन्थ में रोबर्ट ब्रैस्टैन ने इब्सन को थियटर ऑफ रिवोल्ट के प्रतिनिधि तथा प्रोद्घाटक माना।''[१] ब्रैस्टैन ने इस रिवोल्ट को तीन प्रकार के माना है। आत्मीय विद्रोह, सामाजिक विद्रोह और अस्तित्व विद्रोह। इब्सन की रचनाओं में इन विद्रोहों को देख सकता है। आत्मिक विद्रोह में सत्य की खोज का चित्रण है। मानव एवं अतीन्द्रिय शक्तियों के आपसी संघर्ष उनके विषय होते है। 'ब्रान्ड', 'पीर जिन्ड' आदि नाटकों में इब्सन ने इसी भावना को व्यक्त किया है। सामाजिक विद्रोह का स्वर 'ए डोल्स हाउस', 'गोस्टस', 'आन एनिमि ऑफ द पीपिल' आदि नाटकों

---

१. इब्सन्टे नाटक सङ्कल्पम, जि. शंकरपिल्लै द्वारा उत्रत - पृ. १८

में मिलते हैं। अन्तिम रचनाओं तक आते आते इब्सन की समस्याएँ अलग होती हैं। जिन्दगी और उसका अस्तित्व, आत्मा के अन्तक्षोभ, और उसका परिणाम तथ्य और मिथ्या के बीच का संघर्ष आदि वहाँ विषय बनते हैं, यही अस्तित्व विद्रोह है।

इब्सन के कला जीवन का आरंभ १८५० में हुआ। नार्वीजियन थियटर में वह 'थियटर पोयट' के पद में नियक्त हुआ। उस समय का युरोपीय नाट्य साहित्य स्क्राइब की शैली से प्रभावित था। स्क्राइब की सुगठित नाट्य विधान में यान्त्रिक कथाशिल्प से नाटकीयता उत्पन्न करने की शैली थी। प्रारंभ में इब्सन ने इसका विरोध किया। बाद में क्रियांश का विकास और कथाशिल्प के मज़बूत ढांचे ने इब्सन को प्रभावित किया। फिर भी कथा शिल्प का विधान, कथान्त्य की कल्पना आदि को उन्होंने छोड दिया। नाटक के ढाँचे की प्रमुख तकनीकि बातों में उसने गुगठित नाटक तत्वों को अपनाया। किन्तु कथाशिल्प का गठन करते समय अनदेखे पहलुओं और अनादृश जीवन सन्दर्भों को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न इब्सन ने किया।

इब्सन के नाटकों को तीन प्रकार से विभाजित कर सकता है। पहला रोमान्टिक दूसरा सामाजिक और तीसरा प्रतीकात्मक। पहले प्रकार के नाटकों में तत्कालीन नाट्य विधान याने काल्पनिक सिद्धान्तों का प्रभाव है। किन्तु उनमें भी नियमों का विरोध करने वाले नाटक हैं। दूसरे प्रकार के नाटक प्रायः सामाजिक सुधारवादी नाटक हैं। तीसरे प्रकार के नाटकों में प्रतीकात्मकता का महत्व है। इस विभाजन के संबन्ध में आलोचकों के बीच मतभेद है। इब्सनिस्ट लेखक सामाजिक नाटकों को प्रमुख मानते हैं। अन्य कुछ आलोचक इब्सन की

अन्तिम रचनाओं में कलासौन्दर्य देखते हैं। तीसरे प्रकार का मत इब्सन के जीवन और आदर्शों को ठीक तरह समझते हैं। वे लोग इब्सन के नाटकों के कथाशिल्प की गहनता को प्रमुखता देते हैं। वे इब्सन के सामाजिक दृष्टिकोण में विशेष आदर्शों को देखते हैं और सामाजिक नाटकों को नवीन दृष्टिकोण से देखते हैं।

इब्सन के नाटकों का मूल स्वर

१८५८ से १८९९ तक के रचनाकाल में इब्सन ने १८ नाटकों की रचना की। इब्सन के समस्या नाटक विभिन्न प्रकार के हैं। कुछ नाटकों में बौद्धिक तुला पर परंपरागत नैतिकता की परख करके, रुढ़ियों के प्रति विद्रोह प्रकट हुए है। दूसरे प्रकार के नाटकों में व्यक्तिगत आधिकारों की माँग और कर्तव्य के विरुद्ध अधिकार का संघर्ष प्रस्तुत किया गया। अन्य प्रकार के नाटकों में महान नारी और संकुचित दृष्टिवाले पुरुष के संबन्धों की प्रस्तुति हैं। प्राचीनता का आग्रह और परंपरागत विचारों और नैतिक सिद्धान्तों के प्रति विद्रोह, इन विरोधी पक्षों का संघर्ष इब्सन के नाटकों में प्रस्तुत किए है।

१८६२ में 'लब्स कोमडी' द्वारा उसने एक सिद्दान्त की प्रस्तुति की - ''यदि तुम प्रेम करते हो तो विवाह से दूर रहो और यदि विवाह करना है तो प्रेम करना छोड दो।''[१] इस नाटक ने नार्वे के दाँपत्य प्रेम की विचारधारा में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। १८६९ में 'युवकों का सम्मेलन' ('द लीग ऑफ यूत') लिखकर इब्सन ने आदर्शवाद की खिल्ली उठाई। इस पंच अंकीय नाटक कानायक स्टैसगार्ड धन के लोभ में प्रेम और चरित्र को दूषित करनेवाले

---

१. वेर्ल्ड ड्रामा, निक्कल - पृ. ५२६
"If you want to marry", says Ibsen "don't be in love; if you love part"

नवयुवक वर्ग का प्रतिनिधि है। देशभक्ति और समाज सुधार की ओढ़ में वह अपनी भलाई उठाती है। एक दिन उसकी स्वार्थपरायणता का रहस्य खुल जाता है।

१८७३ में इब्सन का एक धार्मिक नाटक निकला - 'एमपरर गलीलियन' जो आध्यात्मिकता से ओतप्रोत है। १८७७ में इब्सन ने यथार्थवाद का उदाहरण स्वरूप एक नाटक लिखा, 'समाज के स्तंभ' (द पिल्लारस आफ द सोसाइटी) इब्सन ने इस नाटक द्वारा तत्कालीन समाज पर दंभ और कपट की जो गहरा पर्दा पडा है उसको अनावृत करने का प्रयास किया। १८७९ में इब्सन का नाटक 'गुड़िया का घर' (ए डालस हाउस) निकला जो एक निराली समस्या का प्रतिपादन करता है। भोली-भाली पतिपरायण पत्नी का स्वाभिमान जब चोट खाता है तो वह अपने पति को छोड देती है। नोरा की यह समस्या तभी तक किसी ने नहीं प्रस्तुत की थी।

१८८१ में उसके प्रख्यात नाटक 'प्रेत' (गोस्टस) निकला। इसकी कथावस्तु भी अजीब है। इसमें एक नारी के बलिदान का चित्रण है जो आदर्श पत्नी और माँ बनने केलिए अपने को मिटा देती है। इस नाटक द्वारा इब्सन ने व्यक्त किया है कि एक अभिशाप की भाँति हमारी व्याधियाँ पीढियों से चली आती है। इब्सन का एक प्रतीकात्मक नाटक है 'जंगली बतख'। (वैलड डेक) इसका सन्देश है अप्रिय सत्य न बताना अच्छा होता है।

इब्सन अपने समय की सामूहिक पद्धति के विरोध में खडा हुआ था। उसको अन्तप्रेरणा के पूर्ण स्वतंत्र विकास में विश्वास था। उनके अनुसार मानसिक विकास ही मानव की उच्चतम उपलब्धि है, और उसके द्वारा ही

जीवनयापन किया जाय। 'रोसमर्सहोम' नाटक द्वारा एक विशिष्ट स्त्री पात्र का कोमल एवं आर्द्र चित्रण किया है। इसमें यथार्थ और प्रतीक शरीर और आत्मा की तरह आपस में बन्धित हैं।

१८८८ में इब्सन ने 'समुद्र की नवयौवना' नाटक की रचना की। वह मानसिक विकारों का प्रतीकात्मक चित्रण करनेवाला एक अजीब नाटक था। १८९० में 'हेडा गैबलर' नाटक निकला जिसमें वैवाहिक जीवन में अतृप्त एवं असन्तुष्ट नारी की सृष्टि हुई है। इब्सन ने बताया कि जो नारी दूसरों के जीवन से खेलती है और जीवन को गंभीर न समझती है उसका सर्वनाश ज़रूर है। १८९२ में लिखित बिगमेस्टर सालनस (द मास्टर बिलडर) आत्मप्रतिष्ठा चाहनेवाला एक महान कलाकार की कहानी है। महान कलाकार का स्थान नष्ट हो जाय इसी भय के कारण विभ्रान्त होकर मौत को स्वीकार करने वाला है इसका नायक। आलोचकों ने इस नाटक को इब्सन की आत्म कहानी माना है। निकल ने साल्नेस की शक्ल और आत्मा में इब्सन को देखा है।[1]

१८९४ 'लिटिल इयोल्फ' नाटक द्वारा इब्सन ने निष्क्रिय प्रताड़ित मानवता का चित्रण प्रस्तुत किया। इसमें एक ऐसे पिता की कहानी है जो तरुण पत्नी के प्रेम में डूबकर टेढे पैर वाले बेटे से घृणा रखता है। इब्सन के अन्तिम नाटक १८९९ में निकला। 'जब हम मृत फिर उठेंगे' (वेन वी डेड अवेकन्ट) में इब्सनवाद के सार है। इस नाटक द्वारा इब्सन ने बताया है कि एक ओर पाषाण युग की नारी अपना शरीर पुरुष को देकर आत्मबलिदान करती है, किन्तु रति

---

१. वेर्ल्ड ड्रामा, निक्कल - पृ. ५४३
When Ibsen wrote The Master Builder, he was technically a master crafts man, spiritually he was a middle aged adolescent.

आनन्द की स्वयं भागी होती है। नाटक में कलाकार की प्रतिभा एवं कल्पना को प्रेरणा देनेवाली आधुनिक नारी का चित्रण है।

इब्सन के नाटकों की एक प्रमुख विशेषता है आत्मघात या मृत्यु की बहुलता। इसको हम उदात्त भावना नहीं कह सकते। दुःखी मानव का जीवन मृत्यु से अधिक मार्मिक एवं प्रभावशाली है। अतः घुटन की अभिव्यक्ति से प्रभावशाली मृत्यु ज़रूर है।

विश्व के विभिन्न देशों के रंगमंय पर इब्सन के नाटकों का प्रभाव

जर्मनी, रुस, ब्रिटन तथा अमेरिका आदि देशों में इब्सन के नाट्य विधान का प्रभाव देखा जा सकता है। इब्सन के समस्या नाटकों को सपप्रथम स्वीकृति जर्मन रंगमंच पर मिली। हॉफमन जर्मनी के प्रमुख यथार्थवादी नाटककार है। उन्होंने विघटनपूर्ण परिवारिक जीवन या परिस्थितियों से विवश व्यक्तियों की कथा प्रस्तुत की। 'सूर्योदय से पूर्व,' 'पुनर्मिलन का महोत्सव' आदि हॉफमन के महत्वपूर्ण समस्या नाटक हैं। इब्सन के समान घुटन और विवाद से धूमिल दांपत्य जीवन का चित्रण हॉफमन ने भी किया है।

रुसी समस्या नाटकों के उद्‌भव से पहले भी रुस में यथार्थवाद को स्थान मिला था। कृषि, दास प्रथा, ज़मीन्दारों और शासन के अत्याचार से रूसी जीवन अधपतन की ओर जा रहा था। इससे क्षुब्द्ध सर्वहारा वर्ग की विद्रोह भावना के फलस्वरूप यथार्थवादी शैली का उदय हुआ। सर्वप्रथम गोगोल ने यथार्थवादी नाटक को प्रस्तुत किया। सरकारी अधिकारियों के भ्रष्टाचारों का व्यंग्यात्मक उद्‌घाटन करनेवाला उनका नाटक 'द इनस्पेक्टर' विख्यात है। टॉलस्टाई, दास्तावस्की, चेखव और गोर्की आदि ने यथार्थवादी नाट्यपरंपरा में

अपने योगदान दिया। रुसी समस्या नाट्यधारा मार्क्स के द्वान्द्वात्मक भौतिकवाद से प्रभावित है। इसको सामाजिक यथार्थवाद माना गया है। चेखव इब्सन की प्रतीकात्मक शैली और अनुभूतियों से प्रभावित था।

अंग्रेजी साहित्य में भी समस्या नाटकों का सृजन हुआ। गालसवर्दी था प्रमुख यथार्थवादी नाटककार। 'द सिलवर ब्राक्स', 'जस्टिस', 'स्ट्राइफ' उसके प्रमुख यथार्थवादी नाटक हैं। गालसवर्ती के पात्र दुखित पीड़ित एवं निराश मानव थे। बर्नाड शां थी समस्या नाटककार था। अपना ग्रन्थ 'क्विन्ट एसन्स ऑफ इब्सनिसम' में उन्होंने इब्सन के सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा करते हुए समस्या नाटकों का समर्थन किया। अमरिकी नाट्य साहित्य में समस्या नाटकों का प्रभाव पडा। युजीन ओनील इसमें प्रमुख है। किन्तु अमरिकी समस्या नाट्य धारा कम महत्वपूर्ण है।

भारतीय नाट्य साहित्य में सर्वप्रथम हिन्दी में इब्सन का प्रभाव देखा जा सकता है। लक्ष्मीनारायण मिश्र को समस्या नाट्यधारा का प्रोद्घाटक माना जाता है। उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविन्ददास, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि अन्य प्रमुख हिन्दी समस्या नाटककार है। परिवारिक संघर्ष, व्यक्ति की मानसिकता, यौन-कुँठा आदि इन्हीं नाटककारों के विषय था।

मलयालन नाट्य साहित्य में भी इब्सन की समस्या नाट्यधारा का प्रभाव है। वैयक्तिक एवं पारिवारिक संघर्ष, यौन समस्या आदि मलयालम समस्या नाटकों के भी विषय रहे। एन. कृष्णपिल्लै, तिक्कोडियन, के. सुरेन्द्रन, एन.एन. पिल्लै आदे प्रमुख समस्या नाटककार है।

दूसरा अध्याय

हिन्दी और मलयालम के समस्या नाटक - उत्स और प्रसार

अध्याय २

हिन्दी और मलयालम के समस्या नाटक - उत्स और प्रसार

हिन्दी नाट्य विधा को रंगमंच के माध्यम से सर्जनात्मक स्तर पर प्रतिष्ठित करनेवाले प्रथम नाटककार है भारतेन्दु हरिश्चन्द्र। भारतेन्दु ने अपने नाटकों में राष्ट्रीयता, उत्कट देशप्रेम, कर्तव्य परायणता की प्रेरणा, सामाजिक सुधार, अमानवीय विदेशी शासन की भर्त्सना आदि उदात्त भावनाओं को उभारकर एक नयी राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना का आलोक फैलाया।

भारतेन्दु के प्रमुख नाटक है 'विधासुन्दर', 'भारत दुर्दशा', 'भारत जननी', 'अन्धेर नगरी', 'प्रेमयोगिनी', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' आदि। भारतेन्दु युग नाट्य कला के नवोत्थान युग है। इस युग के अन्य नाटककार है लाला श्रीनिवास दास, किशोरीलाल गोस्वामी, राधाकृष्णदास, बालकृष्ण भट्ट्, गोपालनाथ गहमरी आदि।

जयशंकर प्रसाद ने ऐतिहासिक, सांस्कृतिक नाटकों के माध्यम से नये जातीय जीवन का चित्रण करने का प्रयास किया। प्रसाद के नाटकों के इतिवृत्त् प्रख्यात राजवंशों की कथा थे। उन्होंने वर्तमान से अतीत की ओर देखा और भविष्य की परिकल्पना की। ''अतीत, वर्तमान, और भविष्य उनके लिए अखंड, एककालिक और अविभाज्य है।''[१] उनके प्रारंभिक नाटक थे सज्जन, राज्यश्री

---

१. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह - पृ. ३९४

आदि। ये तो प्रसाद की रचनायात्रा में महत्वपूर्ण तो नहीं। बाद के नाटकों ने प्रसाद को नाट्य साहित्य के अद्वितीय बना दिया। 'अजातशत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त और ध्रुवस्वामिनी उनके विख्यात नाटक है। अतीत के गौरवगान के द्वारा भारतीय संस्कृति का महत्व स्थापित करना प्रसाद का उद्देश्य था। ऐतिहासिक विषयवस्तु के ज़रिए वे नये दृष्टिकोण की प्रस्तुति करते थे। प्रसाद के नाटकों में पहली बार पात्रों को स्वतंत्र व्यक्तित्व प्राप्त हुए।

प्रसादोत्तर काल का नाट्यसाहित्य प्रसाद के इस स्वच्छन्दतावाद के विरोध में विकसित हुआ। युगीन परिस्थितियाँ बदल गयी थी, तथा प्रचलित नाट्य परंपरा में भी परिवर्तन आ गया। 'वर्तमान युग की प्रवृत्तियाँ, परिस्थितियों और जीवन की वास्तविकताओं ने जहां भावभूमि के नये क्षेत्र उद्घाटित किये, नयी समस्याओं एवं प्रश्नों को जन्म दिया, वहाँ विभिन्न अभिनव प्रयोगों व रूपविधानों केलिए भी मार्ग प्रशस्त् किया''[१] प्रसाद के रोमांटिक नाटकों की प्रतिक्रिया का दावा करते हुए लक्ष्मीनारायण मिश्र ने समस्या नाटक की रचना शुरू की। समस्या नाटक नाम की नाट्यधारा को आगे बढ़ानेवाले अन्य नाटककार है, उदयशंकर भट्ट्, पृथ्विनाथ शर्मा, सेठ गोविन्ददास, उपेन्द्रनाथ अश्क, विनोद रस्तोगी और रमेश मेहता।

लक्ष्मीनारायण मिश्र

भारतेन्दु की नाट्य रचना पद्धति का प्रभाव जिस प्रकार प्रसाद पर पडा, उसी प्रकार मिश्रजी की आरंभिक रचनाओं में द्विजेन्द्रलाल राय और प्रसाद का प्रभाव था। उस समय दुनिया भर के नाटककारों पर शेक्सपियर का प्रभाव था।

---

१. भारतीय भाषाओं का नाट्य साहित्य, शान्ती मलिक - पृ. २४

मिश्रजी ने भी अपना पहला नाटक इसी प्रभाव था। मिश्रजी ने भी अपना पहला नाटक इसी प्रभाव में लिखा। बाद में उनकी धारणा बदल गयी। उन्होंने समझा कि जो साहित्यकार जीवन की अभिव्यक्ति करना चाहता है, उसको इतिहास के गडे मुर्दे नहीं उखाडना चाहिए। अतः उन्होंने ज़िन्दगी के यथार्थ चित्रण करने का निश्चय किया।

मिश्रजी ने अपने नाटकों में भारत की नवचेतना की अभिव्यक्ति की है। उन पर पाश्चात्य नाट्यशिल्प का प्रभाव पडा है। उन्होंने लिखा है ''ऊपरी अकार, प्रकार, भाषा, संवाद, व्यंग्य आदि पर अवश्य ही थोडा प्रभाव इब्सन और उनके बाद के नाट्ककारों का मेरे नाटकों पर पडा है, पर भीतरी भावलोक उनका भारतीय है, कालिदास और भास की परंपरा में है।''[१]

मिश्रजी के मत में पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण भारतीय युवा मानस बाहर से आधुनिक हो गये हैं। किन्तु प्राचीन संस्कार को तोडने में वे भीतरी रूप से असमर्थ रह जाते हैं। भारतीय नारी अब भी दुर्बल और भावुक ही है। नारी की इस विवशता को मिश्रजी काम-समस्याओं का कारण मानते हैं।

मिश्रजी के बुद्धिवाद का आधार उपनिषद और वेद मीमांसा है। भारतीय बुद्धिवाद का महान धर्म है आध्यात्मिक सामंजस्य। अतः भारतीय बुद्धिवाद पश्चिम जैसा नीरस और केवल तर्कों पर आधारित नहीं। मिश्रजी ने बुद्धिवाद को तीक्ष्ण सत्य माना है और उसमें भ्रम और मिथ्या का महत्व भी नहीं है।

मिश्रजी का विश्वास था कि अपनी संस्कृति की रक्षा करना साहित्यकार का कर्तव्य है। साहित्य में स्वाभाविकता बनाये रखना भी ज़रूरी है। प्रसाद को

---

१. मुक्ति का रहस्य की भूमिका, लक्ष्मीनारायण मिश्र - पृ. २६

भारतीय संस्कृति के उद्धारक मानने में मिश्रजी मतभेद व्यक्त करते हैं। भारतीय दर्शन में पाप समझी जानेवाली आत्महत्याओं का चित्रण प्रसाद करते थे। प्रसाद के नाटकों की काव्यमयी भाषा, सहजता नष्ट कर देती है तथा उनके पात्र भी केवल कल्पना पर आधारित हैं।

मिश्रजी ने पात्रों की संख्या, दृश्यों की बहुलता और गीतों का प्रयोग कम कर दिया। स्वगत कथन शैली को वे नहीं मानते थे। उन्होंने मूक अभिनय को भीतरी भावनाओं को व्यक्त करने में सहायक माना। रंगमंच को उन्होंने स्वाभाविक बनाया।

मिश्रजी तो कवि थे। जीवन के यथार्थ चित्रण केलिए उन्होंने हमारे हदय की धटकन के साथ मिल सकनेवाले पात्रों की सृष्टि की। डॉ दशरथ ओझा ने लिखा कि 'जाति के गौरव बोध, अपनी संस्कृति और अपने पूर्वजों की विभूति-निष्ठा ने अन्तर्जगत के कवि मिश्र को समस्या नाटकार बना दिया।''[१]

अपने यथार्थवादी समस्या नाटकों के ज़रिए लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अपनी पूर्ववर्ती नाट्यपरंपरा की याने प्रसाद की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक नाट्य परंपरा की भावुकता और काव्यात्मकता से कोसों दूर रहते हुए, उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप एक नई नाट्य धारा की प्रस्तुति करना चाहा। उन्होंने अपने नाटकों में स्त्री-पुरुष संबन्धों के विभिन्न आयामों की व्याख्या करने का प्रयास किया। किन्तु उसकी सफलता पर प्रश्न चिह्न डालते हुए प्रसिद्ध आलोचक नेमिचन्द्र जैन बताते हैं कि आधुनिक परिवेश को गहराई से देखने की पैनी यथार्थ दृष्टि का अभाव मिश्रजी में है। उन्होंने लिखा है ''इसलिए उनके नाटकों के कथानक

---

१. हिन्दी नाटक - उद्भव और विकास, डॉ. दशरथ ओझा - पृ. २६४

बनावटी, स्तितियाँ अधिकांश आरोपित, काल्पनिक और अविश्वसनीय है, और चरित्र निर्जीव, निरे विचार मात्र, ऐसी अन्तहीन बहस में लगे हुए जो लेखक के खोखले आदर्शवाद में कारण अस्वाभाविक ही नहीं एक भंगिमा मात्र लगते हैं।''[१]

मिश्रजी के समस्या नाटकों के अध्ययन के बाद हमें भी यह कथन सही लगते हैं। फिर भी हिन्दी नाट्य परंपरा को नयी दिशा का पथ प्रदर्शन करने का श्रेय मिश्रजी को है। मिश्रजी के समस्या नाटक हैं - 'सन्यासी', 'राक्षस का मन्दिर', 'मुक्ति का रहस्य', 'राजयोग', 'सिन्दूर की होली' और 'आधीरात।'

सन्यासी

इस काव्य का प्रकाशन वर्ष १९२७ है। अंग्रेज़ी शिक्षा और संस्कृति के प्रभाव के परिणाम स्वरूप हमारे पुराने आदर्शों को छोड़ना की इच्छा जनता में प्रबल है। इस पर असन्तुष्ट मिश्रजी ने अपने नाटक द्वारा हमारी संस्कृति का महत्व स्थापित करने का प्रयास किया। 'सन्यासी' की प्रमुख समस्या प्रेम और विवाह की है। आलोचकों ने इस नाटक पर इब्सन के 'लवस कोमडी' का प्रभाव देखा है। क्योंकि प्रेम और विवाह को अलग करनेवाला सिद्धान्त है सन्यासी का भी। मिश्रजी भी बताता है, प्रेमी से विवाह करना गलत है।

'सन्यासी' नाटक का केन्द्र सहशिक्षा की व्यवस्थावाले एक कॉलेज है। मिश्रजी सहशिक्षा प्रणाली पसन्द नहीं करते। उनके मत में पश्चिमी शिक्षा पश्चिमी आदर्श और पश्चिमी जीवन हमारे जीवन में प्रवेश करके हमें अशान्त बना रहे हैं। मिश्रजी इस शिक्षा प्रणाली में हमारी उन्नति नहीं देखते। उनकी

---

१. आलोचना २००१ जुलाई - सितंबर - पृ. ८६

राय में उसमें संस्कार और चरित्र बल का महत्व नहीं है। हमारी संस्कृति और पाश्चात्य संस्कृति एकदम विरोधी है। यहाँ लडके लडकियों का साथ मिलना पाप समझता है तो सहशिक्षा से दोष होना स्वाभाविक ही है। सहशिक्षा के वातावरण में उद्‌भूत प्रेम के विरुद्ध जाति-व्यवस्था, सामाजिक भेद-भाव आदि आवाज़ उठाते हैं। यदि पाश्चात्य समाज के अनुरूप हमारी सामाजिक एवं नैतिक मान्यताओं में परिवर्तन नहीं होते तो सह-शिक्षा जीवन को दुःखद बनाने योग्य ज़रूर है।

कालेज के छात्र विश्वकान्त और मालती आपस में प्रेम करते हैं। कॉलज का प्रफसर रमाकान्त इस पर ईर्ष्यालु है, क्योंकि वह मालती को चाहता है। विश्वकान्त से ईर्ष्या रखने के कारण रमाशंकर, अखबार में छपनेवाले विश्वकान्त के श्रेष्ट लेखों को घटिया बताता है। उसके आलोचना लिखकर अपने छात्र के नाम छपवाता है। विश्वकान्त और मालती के विवाह की चर्चा में बाधा डालने को भी वह न हिचकता है। एक अध्यापक का इतना नीच रूप और नहीं देख सकता। कालेजों में अध्यापकों की नियुक्ति के नियमों पर मिश्रजी शिकायत करते हैं। उन्होंने बताया है ''प्रथम श्रेणी का एम.ए. प्रोफेसर, होने की योग्यता है चरित्र का संस्कार कुछ हो या नहीं।''[१]

मालती और विश्वकान्त का विवाह नहीं हो पाता। दोनों के पिताओं ने उनका विशेध किया। अतः मालती विश्वकान्त को त्याग देने केलिए तैयार हो जाती है। वह विश्वकान्त के साथ आत्मिक संबन्ध ज़ारी रखना चाहती है, मगर शारीरिक नहीं। वासना वर आधारित प्रेम से बचने एक कारण मालती सन्तुष्ट

---

१. सन्यासी की भूमिका लक्ष्मीनारायण मिश्र - पृ. १३

है। लेकिन परंपरागत हिन्दू नारी के आदर्शों से वह बच नहीं पाती। अतः वह आज की दुनिया में समझदारी निबाहनेवाले प्रेम पर विश्वास करती है। वह रमाशंकर को विवाह करने की चीज़ समझकर कहती है - ''हम लोग प्रेम नहीं करेंगे, विवाह करेंगे, समझदारी के साथ एक दूसरे का खयाल करेंगे।''[१]

मालती समझती है कि वासनायुक्त प्रेम बडी बुरी चीज़ है। वह विवाह को प्राकृतिक आवश्यकता मानती है। अपनी ज़रूरतों को पूरा करनेवाले एक पति की ज़रूरत उसको है। अतः वह रमाशंकर को पति के रूप में स्वीकार करती है। वह नहीं चाहती थी विश्वकान्त अपने देह की भूख के कारण देशसेवा के आदर्श भूल बैठे। अतः वह शरीर बन्धनों से मुक्ति पाकर, अपनी आत्मा विश्वकान्त को समर्पित करती है। मालती की समस्या का समाधान इस प्रकार हो जाता है। यह समाधान बौद्धिक है। यह सच है कि सारी समस्याओं का कारण बुद्धि है और इनका समाधान भी बुद्धि से होना चाहिए। मगर शारीरिक एवं मानसिक प्रेम का इसी तरह का अलगाव सहज नहीं कह सकता। यहाँ नाटककार ने सिद्धान्त - प्रतिपादन केलिए आदर्श का आरोप किया है।

अनमेल विवाह की समस्या भी 'सन्यासी' में प्रमुख है। 'पूर्वीय संसार' नामक अखबार के संपादक मुरलीधर और किरणमयी बचपन से एक दूसरे को चाहते हैं। किन्तु राष्ट्रसेवा का व्रत लेनेवाला मुरलीधर किरणमयी से शादी नहीं करता। वह किरणमयी से कहता है कि अपनी तपस्या भंग न करे। किरणमयी की शादी दीनानाथ के साथ देती है। किन्तु बूढे दीनानाथ की शारीरिक भूख से वह पीड़ित रह जाती है। किरणमयी मुरलीधर के प्रति अपना जो प्रेम है उसे

---

१. सन्यासी लक्ष्मीनारायण मिश्र - पृ. १६८

पवित्र समझती है और वह उसे देवता मानती है। वह समाज की मर्यादा मानकर मुरलीधर से अलग रहना नहीं चाहती। वह मालती से भिन्न है। उपेक्षित होकर भी किरणमयि मुरलीधर से चिपके रहना चाहती है। अतः वह पति के साथ समझौता बनाती है कि दोनों के अलग अलग रास्ते हो। दीनानाथ का भी अपने मित्रों से मिलने की स्वतंत्रता है और उसी प्रकार किरणमयी भी स्वतंत्र है। किरणमयी अपनी समस्या का समाधान निकालती है। वह मुरलीधर को अपना जीवन साती समझती है। मुरलीधर की मृत्यु की खबर पाकर वह बेहोश हो जाती है। वह कहती है ''वह मेरे भीतर है, बराबर रहेगा, इस ज़िन्दगी में, दूसरी ज़िन्दगी में,जब कभी जन्म लूँगी वह मिलेगा।'[१] किरणमयी के असफल जीवन का उत्तरदायित्व रोमान्टिक प्रेम पर नहीं, अनमेल विवाह में उसे बाँधनेवाली सामाजिक मान्यता पर है।

पाश्चात्य समस्या नाटककारों ने पुरानी मान्यताओं का विरोध करके स्वच्छन्द प्रेम को महत्व दिया। मिश्रजी ने भारतीय जीवन दर्शन के अनुसार स्वच्छन्दतावाद का तिरस्कार किया और विवाह को महत्व दिया।

'सन्यासी' की एक अन्य समस्या है अवैद्य सन्तानों की सामाजिक प्रतिष्ठा और अधिकारों की समस्या। मालती का ड्राइवर मोती उसके पिता उमाकान्त का अवैद्य सन्तान है। उमाकान्त मोती पर मालती को संभालने का अधिकार सौंपता है और संपत्ति पर भी उसको अधिकार प्रदान करता है। मोती जानता भी है कि वह नौकर नहीं है। किन्तु उसको सामाजिक प्रतिष्ठा देने में उमाकान्त असमर्थ है। मोती के उत्तराधिकार की समस्या सिर्फ एक वैयक्तिक

---

१. सन्यासी, लक्ष्मीनारायण मिश्र - पृ. १७०

समस्या नहीं, एक सामाजिक समस्या है। इस समस्या को उठाकर मिश्रजी ने हमें इस पर सोचने की प्रेरणा दी। वर्षों बाद देश को इस विषय पर कानून बनाना ही पडा।

इन सभी समस्याओं के अलावा देश प्रेम की आवाज़ भी नाटक में बुलन्द है। राजनीतिक संघर्षों से कलाकार बचकर रह नहीं सकता। विदेशी शासन पर मिश्रजी का विरोध इस नाटक में व्यक्त है। मुरलीधर, विश्वकान्त जैसे देश प्रेमियों का चित्रण इसका उदाहरण है। अंग्रेज़ों की नौकरशाही के अन्यायों पर लेखक की प्रतिक्रिया इस प्रकार हैं "नौकरशाहि का न्याय और कानून.... सब उसकी नीति की बात है। ....नौकरशाही तज़वीज़ लिखती है पहले, सबूत लेती है पीछे"[१] गाँधिजी के असहयोग आन्दोलन के प्रभाव की झलक भी नाटक में हैं। अंग्रेज़ी नीति के विरुद्ध विद्रोह करनेवाला मि. राय जैसे सरकारी कर्मचारी का चित्रण मिश्रजी ने किया है।

राक्षस का मन्दिर

दुनिया में ऐसे बहुत लोग है जो अपनी ज़िन्दगी में 'खाओ, पिओ मौज उडाओ' वाले सिद्धान्त को तरजीह देते हैं। किसी भी कीमत पर शारीरिक इच्छा पूर्ति - वासनापूर्ति में लगी हुई औरतों को भी हम अपने समाज में देखते हैं। उनके सम्मुख न तो पाप है और न पुण्य, न कुछ भला और न बुरा। उनकेलिए न कोई बन्धन, न कोई चिन्ता। लेकिन समय बीतने पर कुछ लोगों की आँखों खुलती है और वे पश्चाताप करते हैं। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'राक्षस

---

१. सन्यासी की भूमिका लक्ष्मीनारायण मिश्र - पृ. ११६

का मन्दिर' नाटक में अश्करी नामक एक वेश्या के माध्यम से मानव मन के दो विभिन्न पक्षों का विश्लेषण किया है।

अश्करी किशोरावस्था में ही वकील रामलाल की रखैली बन जाती है। आर्थिक अभाव और विलासी जीवन के प्रति आसक्ति के कारण अश्करी रामलाल के यहाँ आयी। अमीर वकील रामलाल अपनी कामवासना की तृप्ति केलिए अश्करी का उपयोग नहीं करता। वह सिर्फ शराब पीते समय अश्करी के साथ बैठकर उसे देखते रहना चाहता। वह अश्करी को भाता ज़रूर है, किन्तु काम की दृष्टि से नहीं। इससे अश्करी की हालत बिगड़ जाती है क्योंकि रखैली होते हुए भी वह कामवासना से वंचित रह जाती है।

अश्करी रामलाल के पुत्र रधुनाथ की ओर आकृष्ट हो जाती है। भावुक कवि रघुनाथ भी अश्करी को पसन्द करता है। रामलाल यह जानकर रघुनाथ को घर से निकाल देता है ताकि उसका अश्करी से संबन्ध न हो पाये।

मुनीश्वर नामक एक क्रान्तिकारी युवक रामलाल के घर में आया करता है। रामलाल का उससे विशेष प्यार भी है। मुनीश्वर और अश्करी आपस में चाहते हैं। यह जान कर रामलाल दुःखी हो जाता है। वह जानता है कि अश्करी रूपी जलती आग के पास आकर मुनीश्वर भी जल जाएगा। मुनीश्वर वास्तव में पुलीस कप्तान बैनर्जी का पुत्र है। अश्करी का विश्वासघात जानकर रामलाल उससे विरक्त हो जाता है। अतः अश्करी घर छोडकर चली जाती है।

ईश्वर की ओर अर्पिता होने का निर्णय लेकर अश्करी ललिता के घर रहने लगती है। किन्तु, हिन्दु न होने के कारण ललिता ने उसे घर से निकाल दिया। फिर अश्करी अशरणों की सेवा करने का व्रत लेती है। रामलाल अपनी

सारी संपत्ति खर्च करके मातृमन्दिर नामक एक संस्था की स्थापना करता है जहां वेश्याओं का उत्थान हो और अशरणों का आश्रय हो। उसका कार्य भार संभालने का कार्य अश्करी पर सौंपा जाता है और मुनीश्वर उसके अधिकारी है। रामलाल जानता है कि मुनीश्वर विश्वास करने योग्य नहीं है। उसने अश्करी से कहा है ''वह राक्षस है, और राक्षस का अपना कोई घर नहीं होता। वह देवता के मन्दिर में घुस जाता है और निर्बल होने के कारण देवता उसे रोक भी नहीं पाता।''[१]

मुनीश्वर तो देव मन्दिर को राक्षस का मन्दिर बनानेवाला है। रामलाल की शक्तिहीनता का लाभ उठाकर मातृमन्दिर के आदर्श के बहाने मुनीश्वर रामलाल की संपत्ति और अश्करी का अधिकारी बनना चाहता है। अश्करी जानती है कि वह सुधार के नाम सबको ढगने का काम कर रहा है। मुनीश्वर अपने दिल से चाहता है कि दुनिया में उसका कोई बन्धन न हो, न पति धर्म का, न पितृ धर्म का और न आदर्श का।[२] मुनीश्वर के भीतर प्रवृत्ति और विवेक का द्वन्द चलता रहा जो आधुनिक शिक्षित युवा पीढ़ी की सबसे बडी समस्या है।

मिश्रजी मानते है कि मानव में असत और सत् दोनों प्रवृत्तियाँ रहती हैं। अतः मुनीश्वर के देवता पक्ष की भी झलक नाटक के अन्त में मिलती है। वह मातृमन्दिर का अधिकार रघुनाथ पर सौंपने को तैयार हो जाता है और बताता है कि उसने अशरणों की सहायता, करना चाहा, न समाज में प्रतिष्ठा चाहा। इस प्रकार रामलाल की मानसिकता के भी दो पक्षों का उद्‌घाटन होते हैं। रखैली रखनेवाला रामलाल अपने बेटे को वेश्या से हटाता है और समाज सेवा

---

१. राक्षस का मन्दिर लक्ष्मी नीरायण मिश्र - पृ. ४०

२. वही - पृ. ३२

केलिए धन खर्च करता है। रामलाल के इस देवता पक्ष का असर अश्करी पर भी पडता है।

ललिता, रघुनाथ और मुनीश्वर की पत्नी दुर्गावती को लेकर प्रेम के एक अजीब पक्ष का चित्रण नाटक में हुआ है। ललिता रघुनाथ से प्रेम करती है। रघुनाथ उसका प्रेम इसलिए स्वीकार नहीं करता कि उसने अश्करी का अपमान किया। किन्तु ललिता प्रेम की भींख भांगना नहीं चाहती। अतः वह रघुनाथ के तिरस्कार के बाद भी स्वाभिमान के साथ खडी होती है। दुर्गावती इसके एकदम भिन्न है। मुनीश्वर उसे छोडकर अश्करी के मायाजाल में फँस पडा है। फिर भी वह मुनीश्वर को चाहती है और उसके पास चली आती है। भारतीय नारी समाज के प्राचीन तथा आधुनिक पीढ़ी का संस्कार इससे व्यक्त हो जाता है।

मिश्रजी ने इस नाटक द्वारा नारीत्व की विभिन्न समस्याओं का सफलतापूर्ण चित्रण किया। साथ साथ व्यक्ति को अपनी सारी दुर्बलताओं और अवगुणों के साथ प्रस्तुत भी किया।

मुक्ति का रहस्य

इस नाटक में नारी की काम समस्या, और आदर्श प्रेम, स्वच्छन्द प्रेम, शासन व्यवस्था, तथा पट्टीदारी आदि की समस्याओं का उद्घाटन हुआ। मिश्रजी विवाह - प्रथा तथा भारतीय आदर्शों की प्रतिष्ठा करना चाहते थे। अतः वे आदर्श प्रेम और स्वच्छन्द प्रेम के विभिन्न पहलुओं का चित्रण करते है।

इस नाटक में उमाशंकर आदर्श प्रेम के प्रतिनिधि है, और आशादेवी स्वच्छन्द प्रेम की। उमाशंकर विवाहित था, इसलिए आशादेवी उसका प्रेम प्राप्त नहीं कर सकी। उमाशंकर असहयोग आन्दोलन में भाग लेकर जेल में था, तो

उसकी पत्नी रोगशय्या पर थी। आशादेवी डॉ त्रिभुवननाथ की सहायता से विष देकर उसकी हत्या कर देती है। डाक्टर इस पाप के नाम पर आशा के शरीर पर अधिकार स्थापित करना चाहता है। आशादेवी कानूनी सज़ा से नहीं डरती बल्कि उमाशंकर के सामने अपराधिनि बनकर खडी रहने से डरती है। विवश होकर आशा को अपना शरीर डाक्टर को सौंपना पडा।

आशा इस दूसरे पाप का बोझ सह नहीं सकती। इसलिए वह आत्महत्या करने की कोशिश करती है। लेकिन डाक्टर उसे बचा लेता है। मृत्यु से लौट आनेवाली आशा त्रिभुवननाथ के मन को पवित्र बनाती है। वह अपना अवराध स्वीकार करके क्षमा माँगती है। आशादेवी भी उमाशंकर से अपने पापों की क्षमा माँगती है। उमाशंकर सदैव आशादेवी को प्यार करनेवाला था। अतः वह उसे क्षमा कर देता है और उसे पत्नी के रूप में स्वीकार करने को तैयार भी हो जाता है। किन्तु आशा नहीं चाहती कि उमाशंकर के पवित्र जीवन को कलंकित करे। वह डाक्टर त्रिभुवननाथ को, जिसका उसके शरीर पर पहला अधिकार है अपना पुरुष मानती है। दूसरे जन्म में वह अपने उपास्य देव उमाशंकर को प्राप्त करने की उम्मीद रखती है।

उमाशंकर का प्रेम आदर्शप्रेम है। उस प्रेम केलिए उसे दुनिया के आगे अपमान खाना पडा, अपनी संपत्ति खोनी पडी। फिर भी वह अपराधिनि आशा को क्षमा कर देता है। आशा अपने को इस देवता के योग्य न समझती, अतः वह कहती है - ''तुम मेरे उपास्य देव हो... तुम्हें छूने का अधिकार मुझे अब नहीं... और फिर... अब मैं डाक्टर को प्रेम करने लगी हूँ। मेरे लिए वही पहले पुरुष''[१]

---

१. मुक्ती का रहस्य लक्ष्मी नारायण मिश्र - लृ ११६

वह उमाशंकर के जीवन से हटकर चली गई। आशा की समस्या का यह समाधान उमाशंकर की मुक्ति का रहस्य भी है। अब वह अपने पुत्र मनोहर को प्यार करने लगा।

आशा की समस्या का यह समाधान बौद्धिक समाधान नहीं विवशतापूर्ण समझौता है। क्योंकि अपने शरीर पर बलात्कार से अधिकार स्थापित करनेवाले व्यक्ति को प्रथम पुरुष मानना स्वीकार्य नहीं है। यहाँ मिश्रजी का आदर्श हम देख सकते हैं। वे रोमांस तथा आदर्श की अपेक्ष विवाह को महत्व देते हैं। वे पश्चिम के मुक्तभोग के आदर्श पसन्द नहीं करते। अतः वे अतृप्त आशादेवी को इस समझौते केलिए विवश कर देते है। उस प्रकार आशादेवी और डाक्टर का अपराध बोध और पाप की स्वीकृति आदि भी नाटककार के आदर्शों का प्रमाण है।

इस नाटक में पट्टीदारी की समस्या भी है। उमाशंकर के पिता अमीर थे, किन्दु इसकी मृत्यु के बाद उसकी संपत्ति पर उमाशंकर का चाचा काशिनाथ अधिकार स्थापित करता है। उमाशंकर को अपनी पत्नी के इलाज केलिए भी पैसे नहीं मिले। काशीनाथ उमाशंकर को कुछ हिसाबें लिखकर दिखाता है और उसकी संपत्ति अपना नाम करवाता है। दुनियादारी में अकुशल आशंकर, पारिवारित संबन्धों को तोडना नहीं चाहता। किन्तु काशीनाथ उमाशंकर के बेटे की देखभाल करने में उदास है। वह सिर्फ धन चाहता है।

देश के बदलने वाली आर्थिक परिस्थितियों का उल्लेख भी नाटक में हुआ है। ज़मीन्दारी प्रथा का उन्मूलनम हो रहा है। और किसानों को अपनी मेहनत की कमाई पर अधिकार मिलनेवाला है। संपत्ति पर एकाधिकार समाप्त हो रहा है। साम्यवाद की पुकार देश में गूँजने लगी है। आर्थिक ढांचे में हुई

वदलाव के कारण ज़मीन्दारों का शासन खत्म होनेवाला है। उमाशंकर इस नवीन आन्दोलनों से प्रचावित हुए बिना रह नहीं सका। अतः वह अपनी संपत्ति के बारे में चिन्तित नहीं है। वह चाचा से पट्टीदारी को लेकर झगडा भी नहीं करता।

इस नाटक में स्वायत्त शासन व्यस्था के बारे में भी मिश्रजी बिचार करते है। उमाशंकर नगर पालिका के अध्यक्ष पद केलिए उम्मीदवार है। उसका मुकाबला कोई अमीर सेठ करता है जो रुपये देकर बोट खरीदता है। प्रगतिशील होने के कारण उमाशंकर अमीर लोगों के मित्र नहीं है। उसका अंतरंग मित्र भी पांच सौ रुपये पर अपना वोट बेचता है। यह जानकर उमाशंकर दुःखी हो जाता है कि स्वराज्य केलिए शोर करनेवाले लोग भी स्वार्थी एवं कपटी बन जाते हैं। चेयरमेन होने के बाद उमाशंकर गरीबों की सेवा करता है। वह अमीरों के बंगले का मरम्मत नहीं करता बल्कि गली का उद्धार ज़रूर करता।

इस प्रकार प्रेम की समस्याओं के साथ 'मुक्ति का रहस्य' नाटक में अन्य प्रमुख सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं को भी उभार है।

राजयोग

इस नाटक की भी मुख्य समस्या प्रेम और काम की की है। साथ-साथ पाप की स्वीकृति के सिद्धान्त को भी नाटककार ने महत्व दिया। 'राजयोग' में मिश्रजी सभ्य कहे जानेवाले आधुनिक मानव की मानसिक संकीर्णताओं का चित्रण करते है। मानसिक संकीर्णता के कारण शिक्षित और धनी लोगों का जीवन भी दुःखमय बनता है। नारी को पुरुष के साथ सामानाधिकार प्राप्त है,

किन्तु पुरुष आज भी नारी को अपनी संपत्ति मानकर वासनापूर्ति का साधन मात्र समझता है। 'राजयोग' में इसका स्पष्ट उदाहरण मिश्रजी प्रस्तुत करते हैं।

रतनपुर रियासत के राजा शत्रुसूदन सिंह पत्नी के रहते हुए भी अपनी सत्ता के बल पर चंपा नाम की शिक्षित लडकी से शादी कर लेता है। चंपा के पिता बिहारीसिंह ने बेटी को विश्वविद्यालय भेजकर उच्चशिक्षा प्राप्त करने दिया। वहाँ चंपा दीवान रघुवंश सिंह का बेटा नरेन्द्र से त्याय करने लगी। किन्तु वह अपने प्रेम को माँ-बाप के सामने प्रस्तुत कर न सकी। वह शत्रुसूदन की दूसरी रानी बन जाती है।

शत्रुसूदन की धर्मपत्नी होने की कोशिश चंपा करती तो है, उसने श्रद्धा और सम्मान के साथ पति का उपचार किया, मगर वह उसे प्रेम नहीं कर पाती। यही उसकी समस्या है। पाँच बरस बीत गये। फिर भी चंपा के ह्रदय को जीतने में शत्रुसूदन असमर्थ रहा। चंपा अपने मन में नरेन्द्र को छिपाती रहती है। उसके प्रेम से वंचित नरेन्द्र कहीं चला गया। उसकी कोई खबर किसी को नहीं।

रियासत की दीवानी वंशानुक्रम अधिकार है। रघुवंशसिंह पिछले ५ वर्ष से अपने लापता पुत्र की खोज में है। वह बेटे को रियासत की ज़रूरत मानता है। लेकिन शत्रुसूदन पुश्तैनी हक को नहीं मानता। वह यह भी जानता है कि उसने चंपा और नरेन्द्र को अलग कर दिया। नरेन्द्र पर उसे विश्वास भी नहीं। इस प्रकार चंपा के कारण राजा और दिवान के बीच अघोषित संघर्ष हो रहा है।

शत्रुसूदन का सेवक गजराज भी दुःखी है। बीस वर्ष पूर्व, एक, ठकुराइन से हुए अवैद्य संबन्ध का अपराध बोध उसे पीडित करता है। वह जानता है कि चंबा उस अवैद्य संबन्ध की सन्तान है। गजराज अपने को सभी के दुःख का

कारण मानता है। वह इस राज को छिपाते हुए अविवाहित रहता है। वह इस पाप बोध के कारण उदास है और राज्य छोडकर जाना चाहता है।

इस समय राजमहल में एक राजयोगी आता है। गजराज को देखते ही वह समझ गया कि उसका रोग मानसिक है। राजयोगी अपने योगबल के सहारे गजराज का मन खोल्ता है और सारा पाप कहलवाता है। चंपा का पितृत्व गजराज स्वीकार कर लेता है। रहस्योद्‌घाटन के बाद गजराज की पीडा समाप्त होती है। किन्तु यह जानकर शत्रुसूदन की समस्या बढ जाती है। वह चंपा को अपने कुल के अयोग्य समझकर त्याग करने की सोच में है। राजयोगी उसे उपदेश देता है कि बुद्धिवादी दृष्टि से समस्या पर विचार करे। राजयोगी बनकर नरेन्द्र ही आया था। यह समझकर चंपा को मालूम पडा कि नरेन्द्र उसे स्वीकार करनेवाला नहीं। अतः उसके दुःख का अन्त हो जाता है।

चंपा जानती है कि पुरुष स्त्री को सिर्फ एक साधन मानता है। शत्रुसूदन कभी भी चंपा को रियासत के राजकाज में बात करने का अवसर नहीं देता। शिक्षित होकर भी नारी, नारी ही है। वह पुरुष के सामने मोहक रूप बन जाती है। यही माना जाता है कि स्त्री का मार्ग भक्ति और त्याग का है, ज्ञान का नहीं। पुरुष स्त्री का अविश्वास करता है और उसे अपमानित करता है। चंपा व्यंग्य करती है - ''वह पुरुष ही क्या, जिसने स्त्री का अविश्वास नहीं किया, उसे सदैव सन्देह की दृष्टि से नहीं देखा, उसके पीछे पहरा नहीं बैठाया, और उसके हृदय को अपमान और लाँछन से चूर-चूर नहीं किया।''[१]

---

१. राजयोगक्ष्मी नारायण मिश्र, प-. ४३

पुरुष और नारी के जीवन की इस समस्या का समाधान प्रस्तोता के रूप में राजयोगी नरेन्द्र आता है। नरेन्द्र अपनी प्रणयिनी खो बैठा है। किन्तु उसने उन सारी बातों को भूलकर नया जीवन शुरू किया। उसने अपनी समस्या का समाधान राजयोग में प्राप्त किया। नरेन्द्र के द्वारा मिश्रजी भारतीय आदर्शों की प्रतिष्ठा भी करते है। नरेन्द्र की राय है कि नारी की रक्षा वह स्वयं न कर पाती। जितना आन्दोलन चला जाय स्त्री - कभी पुरुष नहीं होती। अतः वह चंपा को पति के अश्रय में रहने का उपदेश देता है। पूर्व प्रेम का तिरस्करण करके नये जीवन परिस्थितियों के साथ समझौते करने केलिए चंपा विवश हो जाती है।

सहशिक्षा प्रणाली पर अपना विरोध भी मिश्रजी इस नाटक में व्यक्त करते है। नरेन्द्र और चंपा के प्रेम की शुरुआत विश्वविद्यालय से हुई है। अतः उस समस्या का कारण सहशिक्षा है। मिश्रजी की राय गजराज के शब्दों में व्यक्त है - ''नरेन्द्र बाबू ने समझाया कि एक साथ पढने में कोई बुराई नहीं है, लेकिन मेरे मन में यह बात नहीं जमी।''[१]

कला और साहित्य के बारे में अपना विचार भी मिश्रजी ने इस नाटक में प्रस्तुत किया है। छायावाद पर अपना विरोध प्रकट करते हुए, मिश्रजी नरेन्द्र से कहलवाता है ''छायावाद में तो साहित्य के रोगी बोलते है और धर्म के अन्धे।''[२] यों अलग अलग समस्याओं की प्रस्तुति राजयोग नाटक में हुई है।

सिन्दूर की होली

इस नाटक का आधार कर्म-प्रतिफल न्याय का सिद्धान्त है। प्रेम तथा काम की समस्या, विधवा समस्या आदि भी इसकी ज्वलन्त समस्याएं है।

---

१. राजयोग लक्ष्मी नारायण मिश्र - पृ, ३४-३५

२. वही - पु. ५४

नाटक का केन्द्र मुरलीलाल नायक वकील है जो अपना एक पाप कर्म का अपराध बोध बर्सों से झेल रहा है। उसने आठ हज़ार रूपये केलिए अंतरंग मित्र की हत्या की और उसको आत्महत्या का नाम दिया। इस पाप के प्रायश्चित के रूप में वह मित्र के पुत्र मनोजशंकर का पालन पोषण करता है। वह उसे बिलायत भेजने की आशा करता है। उसके मन में यह आशा भी है कि मनोजशंकर अपनी बेटी चन्द्रकला से शादी करे।

मनोजशंकर, आत्मघाती पिता के पुत्र होने के अपमान के कारण मनोग्रन्थी के शिकार होता है। अतः वह पढ़ाई भी छोडता है। वह जानना चाहता है कि उसके पिता ने आत्महत्या क्यों की? वह जानता है कि मुरालीलाल उसको पढाने केलिए बहुत घन खर्च करता है, और अवैद्य रूप से धन कमाता है। मनोज का सन्देह है कि पिता की आत्महत्या का कारण जान लेने से अपने को रोकने केलिए ही मुशलीलाल उसकी आर्थिक मदद् करता है।

मुरालीलाल किसी न किसी प्रकार मनोज को सच्चाई का पता न चलने की कोशिश करता है। मनोज को बिलायत भेजने के खर्च केलिए वह रजनीकान्त नामक एक युवक की हत्या करवाता है। उस प्रकार दूसरा पाप भी वह कर डालता है। किन्तु उसके सारे अरमान टूट जाते -हैं, क्योंकि मनोजशंकर बिलायत जाना पसन्द नहीं करता। चन्द्रकला और मनोज एक दूसरे से प्रेम नहीं करते। वे विवाह करना नहीं चाहते। चन्द्रकला रजनीकान्त से प्यार करती थी। अतः उसकी मृत्यु के बाद वह विधवा रूप स्वीकार कर घर छोड जाती है।

नारी समस्या के विभिन्न पहलुओं को मिग्रजी ने उठाया है। शादी की फीकी याद से ही वंचित बालविधवाएं भारत में मिल जाती हैं। इस नाटक में

मनोरमा एक ऐसी नारी है, जो आठ साल की उम्र में विधवा हो गयी है। किन्तु उसको बिधवापन का दुःख नहीं, क्योंकि उसको सुहाग का सुख भी नहीं मिला। वह भारतीय नारी के समान विधवा का आदर्श जीवन बिताती है। वह चित्रकला में निपुण है। इसके बल पर वह अपनी जीविका चलाती है। उसने अपने वैधव्य को त्याग, तपस्या और साधना के रूप में स्वीकार कर लिया। वह किसी का बोझ बनका नहीं चाहती।

समाज हमेशा विधवा को शंका की दृष्टि से देखता है। सामाजिक रुढ़ियों का पालन किए बिना विधवा की ज़िन्दगी असंभव है। समाज ने निष्ठावती मनोरमा को भी न छोडा। मुरलीलाल अपनी बेटी से कम उम्रवाली मनोरमा से प्रेम की भीख माँगता है। किन्तु मनोरमा के आत्मबल ने उसे बचाया। वह मुरलीलाल के प्रेम का तिरस्कार कर देती है। मनोरमा जानती है कि समाज ने विधवा केलिए कैसा जीवन रखा है। अतः वह मनोजशंकर के पवित्र प्रेम को भी स्वीकार नहीं करती। मनोरमा भी उसे पसन्द करती है। वह यह चाहती थी कि मनोज और उसके बीच सात्विक प्रेम हो, वासना का स्पर्श उस प्रेम को कलंकित न करें। लेकिन मनोज पर उसका विश्वास नहीं। मनोरमा समझती है कि मनोज दुर्बल है, अतः उसके प्रति वासना का विकार उसमें सदा बना रहेगा। मनोरमा विधवापन की साधना नष्ट न करना चाहती। अतः वह चित्रकला छोडकर हरिद्वार चले जाने का निर्णय लेती है।

नाटक में नारी के दो भिन्न रूपों की प्रस्तुति हुई है। एक तो स्वच्छन्द प्रेम और दूसरा, समाज के हितानुसार भावनाओं का त्याग। चन्द्रकला रजनीकान्त से प्रेम करती थी, और उसकी मृत्यु के बाद विधवापन स्वीकार करती है।

मनोरमा इस मान्यता का विरोध करती है। चन्द्रकला का विवाह नहीं हुआ, अतः विधवापन स्वीकार नहीं कर सकती। मनोरमा चन्द्रकला का इस प्रेम को सिर्फ शारीरिक आकर्षण समझती है। उसकी राय में शारीरिक व्यभिचार से भी भयंकर, मानसकि धभिचार है।[१] चन्द्रकला का स्वच्छन्द प्रेम को वह मानसिक व्यभिचार मानती है।

मनोरमा के इस आरोप पर चन्द्रकला का दावा है कि उसका विधवा होना, मनोरमा के विधवापन से सार्थक है, क्योंकि मनोरमा को अपनी पति की स्मृति तक नहीं। लेकिन चन्द्रकला रजनीकान्त की निर्विकार मुस्कान यौवन और पौरुष की विधवा है। मनोरमा का विधवापन सिर्फ रुढ़ियों का है।

दोनों नारियों ने अपनी जीविका खुद चलाने का निश्चय किया। वे पुरुषों पर निर्भर रहना नहीं चाहती। अपनी समस्याओं का समाधान वे खुद करती है।

आधीरात

लक्ष्मी नारायण मिश्र इस नाटक में भारतीय उच्च आदर्शों की जयघोषणा करते हुए नारी जीवन के भारतीय आदर्शों की प्रतिस्थापना करना चाहते हैं। पश्चात्य शिक्षा प्राप्त आधुनिक भारतीय नारी हमारे प्राचीन संस्कार तथा मान्यताओं का तिरस्कार करती है। उनकी धारणा है कि भारतीय दांपत्य जीवन में असन्तोष और पीडा का अनुभव है। 'आधीरात' की नायिका मायावती का जन्म तो भारत में हुआ है, लेकिन उसका शिक्षा संस्कार का निर्माण बिलायत में

---

१. सिन्दूर की होली, लक्ष्मी नारायण मिश्र - पृ. ४३

हुआ। वह नारी की वैयक्तिक स्वतंत्रता पर विश्वास करती थी और पुरुष के प्रतिद्वन्दि बनने की लालसा रखती थी। वह एक से अधिक आदमियों से प्रेम करती है। उनमें से एक प्रेमी के हाथ से दूसरे का वध होता है और खूनी जेल भी गया। यों वह दोनों पुरुषों के सर्वनाश का कारण बनी।

परिश्थितिवश शनैः शौनः मायावती ने मुक्त प्रेम की भावना छोड दी और एकनिष्ठ प्रेम की कामना की। इस सच्चाई से वह अवगत होती है कि यूरोप की नारी ने स्वातंत्र्य के नाम पर वासना तृप्ति की कोशिश की है। वे भोग केलिए अधिकार प्राप्ति और व्यभिचार चाहती थी। वास्तव में इस विचार ने हमारे दांपत्य जीवन और सामाजिक मान्यताओं को दूषित कर दिया। मायावती समझ लेती है कि सामाजिक मर्यादा और विधान तोडने की चीज़ें नहीं हैं। और पाश्चात्य नारी आन्दोलनों के पीछे आत्मवंचना और दंभ ही है। अपनी सूल वह स्वीकार करती है - ''रक्त की उत्तेजना को, जवानी की वासना और उन्माद को अंग्रेज़ी पढी लिखी सारी लडकियों की तरह मैं ने भी नारी स्वातंत्र्य और नारी समस्या कहकर दुनिया को हिला देना चाहा था।''[१] वह जानती है कि यह सिद्धान्त व्यवहारिक नहीं है।

भारतीय दांपत्य विधान में एकनिष्ठता है, पाश्चात्य विवाह में स्वतंत्रता और स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति और संघर्ष रहता हैं। वहाँ प्रेम की पवित्रता का महत्व नहीं है। इसके बारे में मायावती अच्छी तरह अवगत है। राधाचरण के साथ उसका दांपत्य जीवन ऐसा था। उसका कहना है ''इस देश में विवाह का जो आदर्श है - स्त्री-पुरुष का दो जीवन और दो आत्माओं का मिलकर एक हो

---

१. आधिरात लक्ष्मीनारायण मिश्र - पृ. ४२

जाना - उनकी व्यक्तिगत भिन्नता का नाश और एक सम्मिलित व्यक्तित्व का उदय। इसका अवसर मुझे नहीं मिला। मेरा विवाह तो अंग्रेजी ढंग से हुआ था जिसमें सन्देह है, डइवोर्स है, पुरुषों के प्रति हिंसा है, जिसके मूल में वह भावना है कि बच्चे पैदा न हो, किसी तरह का बन्धन न हो।''[१]

अपनी भूल से अवगत होने के बाद मायावती का मन पुरुष के प्रति अर्पित होने को तरसती है।

पश्चिमी भोगवाद के प्रति विद्रोह प्रकट करने केलिए मायावती ने प्रकाशचन्द्र से शादी करके एक आध्यात्मिक प्रयोग किया। इस रिश्ते में कलुष केलिए स्थान नहीं। प्रकाशचन्द्र अपनी पत्नी से असन्तुष्ट होकर उसे छोडकर आया है। मायावती आदर्श भारतीय नारी की निष्ठा से पति केलिए व्रत, उपासना आदि निभाती है। शारीरिक सुख-भोग का कोई स्थान वहाँ नहीं था। किन्तु समय बीतने पर प्रकाशचन्द्र संयम खो बैठा है। मायावती सोचती है कि प्राकृतिक उन्माद के संयम से जीवन की पूर्णता प्राप्त हो सकती है। नारी अत्यन्त संयम, त्याग और साधना से पूर्णता प्राप्त कर सकती है। मगर पुरुष से इतने बड़े त्याग और संयम की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

नाटककार ने यहाँ अपना पूर्व संस्कार व्यक्त किया है, जो नारी से सतीत्व की अपेक्षा की जाती है और पुरुष को स्वतंत्र बना देता है। पुरुष संयम करने में असमर्थ है और अपनी उच्छृंखलता का दोष नारी पर रखता है। मिश्रजी ने नारी का जो महान आदर्श प्रस्तुत किया है वह व्यवहारिक्त नहीं। पाँच वर्ष तक पति-पत्नी का साथ रहकर केवल आध्यात्मिक प्रेम करते रहना

---

१. आधीरात लक्ष्मीनारायण मिश्र - पृ. ३४-३५

स्वाभाविक नहीं है। प्रकाशचन्द्र का संयम टूट जाना स्वाभाविक है। किन्तु मायवती उसके पतन का कारण अपने को समझकर आत्महत्या कर डालती है।

पुरुष सदैव अपनी वासना को ही महत्व देते है। स्त्री की इच्छाओं और कामनाओं का विचार वह कर नहीं सकता। अतः मायावती की मृत्यु के बाद प्रकाशचन्द्र के मित्र राघवशरण कहता है - ''जिस स्त्री के जीवन में एक, दो, तीन, चार इतने प्रेमी हो उठे, सिवा आत्महत्या के वह और कर ही क्या सकेगी।''[१]

पाश्चात्य शिक्षा, सरकार और आदर्श से प्रभावित हमारे समाज ने वहाँ के जीवन की समस्याओं को भी ले लिया। मिश्रजी ने इन्हीं समस्याओं का निरूपण किया, किन्तु उसका समाधान भारतीय मान्यताओं के आधार पर हुआ।

उदयशंकर भट्ट्

भट्ट्जी की नाट्यकला का आधार प्राचीन भारतीय जीवन और संस्कृति है। ऐतिहासिक एवं पौराणिक परिप्रेक्ष्य में उन्होंने कुछ नाटकों की रचना की, जैसे, 'विद्रोहिणी अंबा', 'मुक्तिदूत विश्वामित्र', 'मेघदूत' आदि। उन्होंने इन्हीं नाटकों में समाज के खोखलेपन, आडंबर और मिथ्याभिमान का चित्रण किया है। भट्ट्जी जानते है कि समसामायिक जीवन समस्याओं से घिरा हुआ है। नाटक इन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर सकता है। समस्या नाटक का यही उद्देश्य है कि समस्याओं का विवेचन कर जीवन के नवनिर्माण का आह्वान

---

१. आधीरात लक्ष्मीनारायण मिश्र - पृ. १३०-१३१

दे। भट्टजी का विश्वास यह है कि ''कोई भी नाटक यदि मानसिक सन्तुलन एवं मनोविज्ञान की कसौटी पर ठीक नहीं उतरता तो वह आधुनिक दृष्टि से व्यवहार्य नहीं है।''[१] भट्टजी ने कुछ समस्या नाटक भी लिखे हैं। उनके प्रमुख नाटक हैं 'कमला', और 'नया समाज'।

कमला

प्राचीन भारत में सामन्ती विचारधारा में पले हुए आदमी नारी के प्रति रुढ़िगत एवं निष्ठूर दृष्टिकोण रखते थे। नारी भी अपनी पीडा को सहकर चुपचाप जी रही थी। किन्तु आज परिस्थितियाँ बदलने लगी है। नारी शिक्षित होने लगी, वह अपने अधिकारों से अवगत हो गयी और अपने हक मांगने लगी। जो पुरुष नारी को सिर्फ भोग की वस्तु मानता है उसका विरोध करने की शक्ति आधुनिक नारी में है।

किन्तु इस प्रकार स्वतंत्र व्यक्तित्ववाली नारी को समाज सन्देह की दृष्टि से देखता है। उसकी सेवा भावना और उदार मन पर भी गलत फहमी होती है। अतः उसका जीवन दर्दनाक बनता है। 'कमला' नाटक में नारी के इस रूप को भट्टजी ने उभारा है। ज़मीन्दारी व्यवस्था के बुरे असर के कारण नष्ट होनेवाली नारी की ज़िन्दगी का विभिन्न चित्र 'कमला' में प्रस्तुत है। डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है कि ''कमला में चिरन्तन नारीत्व का व्याख्यान है।''[१]

'कमला' के प्रमुख पात्र कमला एक सुशिक्षित समाज सेविका है जो अनमेल विवाह का शिकार हो चुकी है। बूढ़े ज़मीन्दार देवनारायण उसका पति

---

१. समस्या का अन्त उदयशंकर भट्ट प्राकथन - पृ. ४

२. आधुनिक हिन्दी नाटक डॉ. नगेन्द्र - पृ. ६१-६२

है जो पुरुष की मदान्ध अहमन्यता का प्रतीक है। वह स्त्री का स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं जानता, बल्कि स्त्री को केवल उपभोग की वस्तु मानता है। वह जानता है कि कमला उसके लिए अनुरूप पत्नी नहीं, अतः वह कमला पर सन्देह करने लगता है। कमला का सेवाकार्य उसे पसन्द नहीं है। वह हीनता भाव का अनुभव करता है और सोचता है कि कमला, अपने हाथ से निकलती जा रही है।

कमला समाज सेविका होने के कारण उसे घर के बाहर जाना पडती है और उसके कई रिश्ते और संबन्ध भी है। अनाथालय का एक बच्चा शशिकुमार के प्रति कमला विशेष प्यार रखती है। देवनारायण की शंका है कि वह कमला का ही अवैद्य पुत्र है। अतः वह उसे घर से निकाल देता है और कहता है - ''तुम्हारी मुस्कान में इतना पाप है, यह मैं ने आज जाना। जाओ, जाओ, हा इस ज़मीन्दार के कुल पर इतना कलंक।''[१] किन्तु, वास्तव मं वह बच्चा, देवनारायण का ज्येष्ठ पुत्र यज्ञनारायण की अवैद्य सन्तान है। उसकी माँ कमला की सहेली उमा है। शशि को अनाथ देखकर कमला दुःखी हो गयी और उसे घर लाती है। उसकी यह ममता उसका अभिशाप बनती। पति से तिरस्कृत कमला आत्महत्या कर लेती है। उसके बाद देवनारायण सत्य जान लेता है और पश्चताता है। वह यह कहते हुए मर जाता है - ''आग, चारों तरफ आग। पाप जीवन की आँखों में इतना गहरा चिपा है, जाना न था।''[१] यज्ञनारायण के धोखे के कारण सबका सर्वनाश हो जाता है। उसकी प्रेमिका उमा और पुत्र शशी भी मर जाते है।

अनमेल विवाह की समस्या और नारी स्वातंत्र्य की समस्या को सफलतापूर्वक नाट्ककार ने एक सूत्र में पिरोया है। सुशिक्षित समाज सेविका

---

१. कमला उदयशंकर भट्ट् - पृ. ५०-५१

२. वही पृ. ८३

होते हुए भी कमला को पति के अत्याचारों से रक्षा नहीं मिलती। उसको अपना जीवन बली देना पडा। अनमेल विवाह की पीडा के साथ साथ कमला पति की निष्ठूरता का भी शिकार भी। इस नाटक में आत्महस्या को सबका समाधान मानता है। यह प्रश्न नाटक के अध्ययन के बाद हमारे मन में ज़रूर उठता है कि स्त्री को सिर्फ विलास की सामग्री समझनेवालों की आँखें खोलने का एक मात्र उपाय क्या आत्महत्या है।

यदि कमला चाहती है तो वह पति के बिना भी रह सकती है। और समाज सेवा भी पर सक्ती है नहीं तो वह सच बता सकती थी। किन्तु उसने आत्महत्या करने का निर्गय लिया। उसकी आत्महत्या से किसी की भी रक्षा नहीं हुई, किसी का कोई लाभ भी नहीं हुआ। कोशिश करती थी, तो कमला सच्चाई बताकर, पति से गौरवपूर्ण सुरक्षा ज़रूर प्राप्त कर सकती थी। अतः उसकी आत्महत्या आस्वाभाविक ज़रूर लगता है। समस्या नाटककार का इस प्रकार समस्या का समाधान आत्महत्याओं में ढूँढना बिलकुल अनुचित है। जीवन को प्रफुल्ल बनाना उसका कर्तव्य है। उसकी बलि नहीं। इसलिए समस्याओं का समाधान मृत्यु से नहीं, ज़िन्दगी से होना चाहिए।

नया समाज

भट्टजी पर युग-जीवन का प्रभाव गहरे रूप में पडा है। समाज और व्यक्ति दोनों में बुराइयाँ होती है। भट्टजी का विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह समाज में व्याप्त दोषों, के निवारण का प्रयत्न करें। अपने नाटकों के ज़रिए इसके अनुकूल पात्रों की सृष्टि भी भट्टजी ने की है। अर्थयुग की बदलती परिस्थिति में वैयक्तिक संबन्ध और प्रेम आदि को भी नये मूल्यों से

नापने लगा है। 'नया समाज' की भूमिका में भट्ट्जी ने बताया है ''यह अर्थयुग है, जिसमें मनुष्य पूर्ण रूप से स्वतंत्र होना चाहता है।.... आज मनुष्य के चिन्तन में रस जागृति की अपेक्षा अपने अस्तित्व के तर्क का दबाव अधिक ज़बर्दस्त हो उठा है। दया, माया, ममता, मोह भी जैसे तर्क-संगत आधार माँग रहे है।''[१]

'नया समाज' में भट्टजी ने ज़मीन्दारी उन्मूलन के बाद ज़मीन्दारों की वास्तविक स्थिति प्रस्तुत की है। यौन समस्या, अवैद्य सन्तान आदि समस्याएँ भी इसमें है। ज़मीन्दारी उन्मूलन के पश्चात् भी कुछ पुराने ज़मीन्दार अपनी प्रतिष्ठा और शान छोडने को तैयार नहीं है। वे कोई भी काम खुद नहीं कर सकते और अपने पुराने आडंबर छोड भी नहीं सकते। 'नया समाज' का मनोहर सिंह ऐसा आदमी है, जो पुराने शान के गर्व पर जीता है। वह दस कदम भी पैदल चल नहीं सकता। एक बार उसका पुत्र चन्द्र और किसी दूसरे आदमी के बीच दूसरे के झगडे की बात सुनकर, उसकी पुत्री भी पैदल चलकर चन्दू के पास पहुँचती है। किन्तु मनोहर सिंह पैदल चलने केलिए तैयार नहीं था। वह कहता है - 'सब गये? बिना किसी आदमी के, बिना सवारी के, मैं कैसे जाऊँ? ज़मीन्दारी गयी तो क्या मैं पैदल चलूंगा, क्या करुँ, कैसे करुँ'?[२] उसकी इस रुढ़िवादिता का और भी प्रमाण मिलता है। जब चन्दु खेती करने की इच्छा प्रकट करता है, तो उनके रूढ़िवादी विचारों पर आधात होता है। वह कहता है कि तलवार पकडने वाले हाथों में हल पकडना नीच काम है। ज़मीन्दार का काम हुकुमत करना है।

---

१. नया समाज भूमिका उदयशंकर भट्ट - पृ. १-२
२. वही - पृ. ४२

ज़मीन्दारों की शोषण वृत्ति की भी प्रस्तुति भट्ट्जी ने की है। ज़मीन्दार लोग किसानों पर अत्याचार करते है और उनके शोषण भी करते है। फसल कमज़ोर होने का भी दोष किसान पर है। मनोहरसिंह का नौकर रूपा कहता है कि फसलअच्छे न मिलने के कारण असामी इस बार माफी चाहते है, तो मनोहर सिंह का ज़मीन्दारी रूप जाग उढता है - ''माली, कैसी, माफी? हर साल माफी। ...मैं एक पैसा छोडूँगा। सब सालों को जेल भेजकर रहूँगा। देखो, जो पैसा न दें उनकी खडी फसल कट्वा दो, झोपडियों में आग लगवा दो, जानवर छीन लो, रोने दो सालों को।''[१]

यौन समस्या के एक अजीब पहलू का चित्रण इस नाटक में हुआ है। मनोहरसिंह की बेटी कामना अपने घर का नौकर रूपा को चाहती है। उसे अन्य कोई भी पुरुष अच्छा नहीं लगता। अतृप्त काम पिपासा के कारण वह मानसिक रोगि बन जाती है। रूपा तो कुछ नहीं कर सकता क्योंकि वह वास्तव में लडका नहीं, लडकी है। यह जानकर कामना दुःखी हो गयी। वह कहती है ''यही अकेला मुझे अच्छा लगता था। इसकी आँखों में मुझे अपनापन दिखायी देता था। मैं ऐसा रूप चाहती थी, मैं ऐसी आँखें चाहती थी। .....मैं अब व्याह कर नहीं सकती।''[२] रूपा और कामना देखने में एक जैसा है, यानी उनका रूपसाम्य ही कामना के आकर्षण का कारण बना। रूपा तो चन्दु को चाहती है। चन्दू उसे डाँटता है और मारता भी है। यह सब सहकर रूपा प्रसन्न रहती है। जब चन्दू जान जाता है कि रूपा लडकी है तो वह उससे शादी करने केलिए तैयार हो जाता है।

---

१. नया समाज उदयशंकर भट्ट् - पृ. १५-१६
२. वही - पृ. ५८

मनोहर सिंह ने अपना मिथ्या भि मान छोडकर रूपा को बहु के रूप में रचीकार किया, किन्तु तब एक और समस्या उत्पन्न हो जाती है कि रूपा मनोहरसिंह का ही अवैद्य सन्तान है। भाई बहन की शादी नहीं हो सकती। मनोहर सिंह रूपा की शादी दूसरे के साथ करवाता है।

समाज में जो दोष दिखाई देखता है उसका उत्तरदायित्व व्यक्ति पर ही है। व्यक्ति की बुराइयाँ ही समाज की स्मस्या बनती है। इस नाटक के द्वारा भट्टजी ने बताया है - ''पिता के पापों को उसकी सन्तान ही धो सकती है। हमें नये समाज का निर्माण करना है।''[१]

सेठ गोविन्ददास

सेठ गोविन्ददास एक वैष्णव परिवार का था जो सांप्रदायिक मान्यता की दृष्टि से वल्लभमतानुयायी था। इसलिए सेठजी को अपनी बाल्यावस्था में ही ब्रज की ससलीला से परिचित होने का अवसर मिला। इस अनुराग ने सेठजी को देश-विदेश के नाटकों का गंभीर और व्यापक अध्ययन करने की प्रेरणा दी। इस विषय में सेठजी के बताया है कि - ''इस अनुराग के कारण मुझे पहले हिन्दी और हिन्दी के द्वारा बंगला, फिर अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ों द्वारा अन्य देशों के नाटक तथा नाटक साहित्य पर अनेक ग्रन्थ पढने एवं हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला, और अंग्रेज़ी नाटक देखने का अवसर पडता रहा है।''[२]

राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने के कारण ओर लंबी अवधी केलिए जैल वास की सज़ा प्राप्त थी। जेल के भारी वक्त को काटने के लिए नाटक रचना करने लगा। उनके अधिकांश नाटक जेल में ही लिखे गये है।

---

१. नयासमाज उदयशंकर भट्ट् - पृ. ६९

२. तीन नाटक, सेठ गोविन्ददास प्रकथन

सेठजी का परिवार उद्योगपतियों का था। देश के उद्योगपतियों का विश्वास था कि अंग्रेज़ों के व्यवसायिक स्वार्थ के कारण देशी उद्योग धन्धों का विकास न होगा। सेठजी के परिवार में भी स्वदेशी आन्दोलन की घूम मची हुई थी। अतः सेठजी को वह स्वदेशी संस्कार जन्म से ही प्राप्त है।

भारतीय वेदान्त दर्शन ने सेठजी को बेहद प्रभावित किया। उनकी मान्यता थी कि 'सर्वम खलिद ब्रह्म' का अमर सन्देश मनुष्य जाति की चरम उपलब्धि है। सेठ्जी का विचार था कि व्यक्ति को समस्त सृष्टि केलिए जीना चाहिए। गाँधिजी का भी प्रभाव उनमें था। इसलिए वे अपनी समृद्धि के विद्रोह में दरिद्रनारायण का पक्षधर हो गये।

सेठजी के नाटकों में सबके प्रति प्रेम की विह्वलता का अनुभव करनेवाले व्यक्तित्व मुखर है। उन्होंने गाँधीदर्शन को अपने जीवन आदर्श के रूप में स्वीकार किया है। देशी-विदेशी नाटकों का गंभीर अध्ययन के बाद उन्होंने अपने लिए कुछ नियम बना दिये। सेठजी नाटक में वैचारिकता को प्रमुखता देते है। वैचारिकता जीवन की किसी समस्या को लेकर ज़रूर थी। वैचारिकता के विकास केलिए संघर्ष पूर्ण कथा की अवश्यकता है। सेठजी मानते है कि 'जिस नाटक में जितना महान विचार होगा, जितना तीव्र संघर्ष होगा, जितनी सुगठित एवं मनोरंजक कथा होगी, जितना विशद चरित्र-चित्रण होगा और जितना स्वाभाविक कथोपकथन होगा, वह उतना ही उत्तम और सफल होगा।'[१]

---

१. तीन नाटक, सेठ गोविन्ददास प्रकथन

सेठजी के नाटकों में यथार्थ की प्रस्तुति हुई है। किन्तु उन्होंने समस्या के समाधान गाँधीवादी आदर्श से माना हैं। यह आदर्शवादिता समस्या नाटक के अनुकूल नहीं है।

प्रकाश

इस नाटक को 'सोशियोपोलिटिकल' कहता है, क्योंकि इसमें सामाजिक एवं सांप्रदायिक समस्याओं के साथ राजनैतिक प्रश्नों को भी उठाया है। पूँजिपतियों के नवोदित वर्ग और पुरानी पीढ़ी के बीच का संघर्ष और उसके कारण उत्पन्न समस्याओं को सेठजी ने इस नाटक में प्रमुखता दी है। पुराने ज़मीन्दार वर्ग चाहे कितने बुरे है, उनमें कुलीनता एवं सहिष्णुता का संस्कार प्राप्त था। किन्तु पूँजीपतियों के नये प्रतिनिधी कपडी एवं स्वार्थी है। यह नया वर्ग देश केलिए खतरा है।

इस नाटक में पूँजीपति के नवोदित वर्ग के जाल मं फँसकर अपने ऊँचे आदर्शों को भूलनेवाले लोगों का चित्रण है। पत्रकार को अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व होना चाहिए। इस नाटक का पत्रकार कन्हैयालाल पूँजी का गुलाम होकर उनके लिए हित कार्य करता है। ये पूँजीपति लोग किसी को भी ईमानदार रहने नहीं देंगे। दामोदरदास गुप्त इस नये वर्ग का प्रतिनिधि है जो देश की भलाई केलिए औद्योगिक विकास चाहता है। उसकी राय में गाँधीवाद और साम्यवाद दोनों भारत केलिए हितकारी नहीं है। वह कहता है उद्योगपति ही देश के उद्धारक हो सकते है।

आधुनिक युग में समाज और संबन्धों में होनेवाली नैतिक गिरावट को सेठजी नाटक में स्थान देते है। घन के लोभ के कारण लोग इतना गिर जाते

हैं कि वे अपने परिवार वालों की भी परवाह नहीं करते। 'प्रकाश' नाटक का बैरिस्टर नेस्टफील्ड अपनी वकालत चलाने केलिए अपनी भतीजी को अपने शरीर का सौदा करने केलिए प्रेरित करता है। घन के लोभ ने सदाचार की नींव हिला दी है। पैसे से जज को फँसाकर, मुकदमा जीत सकता है अर्थात् आज न्याय तथा सदाचार आदि का महत्व नष्ट होता जा रहा है।

भारत की धार्मिक सहिष्णुता एवं एकता को नष्ट करनेवाला सामान्य जनता नहीं, उसके नेतृत्व करनेवाले 'सज्जन' है। वे अपने स्वार्थलाभ केलिए जनता की धार्मिक भावना का अनुचित लाभ उठाते है। 'प्रकाश' में हिन्दु और मुस्लीम सांप्रदायिकता के प्रतीकवाले दो पात्र है, पं. विश्वनाथ और मौलाना शहीदबख्श। ये नेता अपने धर्म के लोगों की सहज धर्मभावना को उत्तेजित कर अपने स्वार्थ लाभ केलिए सांप्रदायिक दंगे का इन्तज़ाम करते है। अजीब बात यह है कि दोनों नेताओं के बीच आपसी मिलीभगत होती है। वे दोनों दूसरों को भटकाते है, पर कहीं ऐसा कुछ न करते जिससे खुद का दोष हो।

इसके साथ साथ जाति - प्रथा के कारण उत्पन्न समस्या को भी नाटक में स्थान है। मनोरमा प्रकाश को चाहती है, किन्तु जाति-भेद के कारण उनका विवाह संभव नहीं है।

सेठजी ने प्रस्तुत नाटक में इस तथ्य पर भी प्रकाश डाला है कि आधुनिक नारी पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण करती है और भारतीय आदर्शों को भूलती है। भारतीय समाज में नारी पर जो नियन्त्रण और मर्यादाओं का बन्धन है वह उनको सह्य नहीं। रुग्मिणी पाश्चात्य सामाजिक व्यवस्था की प्रशंसा करनेवाली है। उसकी राय में वहाँ धर्म के झूठे ढकोस्ले नहीं है। वहाँ

स्त्रीयों पर पुरुषों का अत्याचार नहीं होता है। मनोरमा तो भारतीय आदर्शों को मान्यता देनेवाली युवती है। वह रुग्मिणी को समझाती है कि प्रत्येक देश में उसकी व्यावहारिक और प्राकृतिक परिस्थिति के अनुसार कुछ समस्याएँ रहती है। उसका कहना है अपनी प्राचीन संस्कृति को मिटाकर पश्चिमी सभ्यता का ग्रहण करना, अपने पैरों को काटने जैसा है। मनोरमा की शिकायत है कि पश्चिम की नारी ने स्वतंत्र होकर सच्चे गार्हस्थ्य सुख का नाम-निशान मिटा दिया है। हमारे यहाँ बालविधवाएँ है, नारी पर अत्याचार है, फिर भी पश्चिम का अन्धानुकरण गलत है। क्योंकि क भी किसी रोग की औषधी उससे भी भयंकर दूसरे रोग का कारण बन सकता है। एक पश्चिमी नारी थेरीज़ा का टूटा हुआ दांपत्य जीवन इसका प्रमाण है।

राष्ट्र की बदलती हुई राजनीतिक परिस्थिति को नाटककार ने नाटक में प्रमुखता दी है। नाटक का प्रमुख पात्र प्रकाश सामन्तशाही और भेद-भाव का विरोध करनेवाले नवयुवक का प्रतीक है। वह गाँधिवादी है जो सत्य की स्थापना का मकसद रखता है। वह संपत्ति का न्यायपूर्ण बँटवारे करने की ज़रूरत समझता है। अतः पूँजीपति लोग उसका विरोध करते है। पूँजीपति यह नहीं चाहते कि अपनी संपत्ति पर किसानों तथा मज़दूरों का अधिकार हो। वे किसानों का शोषण कर रहे थे। अतः भारत के सामान्य किसान अपने अधिकारों से वंचित रहा। आज स्थिति बदलनेवाली है। उसका चित्रण 'प्रकाश' में हुआ है।

भाग्य तथा ज्योतिषियों पर आँखें मूँदकर विश्वास करना रूढीवादी लोगों की आदत है। वे ज्योतिषियों के कहने पर कुछ भी करने केलिए तैयार रहते है। सेठजी ने बताया है कि ज्योतिषियाँ के वचन को सत्य या प्रामाणिक

मानना भूल है। 'प्रकाश' में ज्योतिषी की बात पर विश्वास करके राजा अजयसिंह ने अपनी पत्नी इन्दु का परित्याग किया क्योंकि उसका सन्तान नहीं होगी। किन्तु इन्दु प्रकाश को जन्म देती है। अन्त में अजयसिंह को पछताना पडा।

सिद्धान्त स्वातंत्र्य

इस नाटक की रचना नागपुर की जेल में हुई। इसका पहला प्रकाशन 'हँस' के दो अंकों में हुआ। तत्कालीन विदेशी शासन ने इस नाटक के प्रकाशन को इतना आपत्निजनक समझा कि उसने 'हँस' से दंगस्वरूप ज़मानत तलब की।

कुछ लोग ऐसे है जो परिस्थिति के अनुसार विचार और आचरण बदलते हैं। आदर्श के प्रति आकृष्ट होनेवाले ये लोग प्रतिष्ठा और धन के लोभी होकर नीचकार्य करने से नहीं हिचक्ते। भारत में कुछ ऐसे व्यक्ति ज़रूर थे, जो पहले विदेशी शासन के विरोधी थे और फिर अंग्रेज़ों के दास बनते थे। इस नाटक का त्रिभुवन इस तरह का एक पात्र है। वह, लाला चतुर्भुज दास का बेटा है जो धनिक एवं ज़मीन्दारी प्रथा को महत्व देनेवाला है। त्रिभुवन को बि.ए. की उपाधि प्राप्त है। उसने अरविन्द नामक दोस्त के संपर्क से आतंकवाद पर आकृष्ट होकर अंग्रेज़ों के विरुद्ध आन्दोलन चलाया। किन्दु जवानी का जोश खतम हुआ तो वह अंग्रेज़ों का पादसेवक हो चुका। अब उसे 'सर' की उपाधि प्राप्त है और ग्रहमन्त्रि का पद भी है। भविष्य में वह किसी प्रान्त का गवर्णर भी होनेवाला है। प्रतिष्ठा और ख्याति केलिए वह अपनी आत्मा को भूल गया है।

त्रिभुवन का बेटा मनोहर गाँधीजी के राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रभावित है। वह दादा और पिता का विरोध करता है। मनोहर की माँग है कि ज़मीन्दारी हक छोड दे और ज़मीन का अधिकार किसानों को दे। उस समय भारत में

होनेवाली क्रान्तिकारी भावनाएँ तथा आन्दोलन किसानों के प्रति जागरूक थे। अंग्रेज़ों के अधिकार के बल पर ज़मीन्दार लोग किसानों का शोषण कर रहे थे। भुवन का विचार था कि अपना बेटा भी अपनी तरह जवानी में शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठायेगा, पर बाद में वह सुधर जाएगा। किन्तु मनोहर आखिरी क्षण तक अपने आदर्शों पर अडिग रहनेवाला था। अतः उसे पुलीस की गोली खानी पडी।

मनोहर की मृत्यु के बाद लाला चतुर्भुजदास का मानसिक परिवर्तन हो गया। वह पोत्ते की अभिलाषाओं की पूर्ति करने का निश्चय लेता है। उस समय सरकारी कर्मचारी भी अंग्रेज़ों के निदेशानुसार काम करने के कारण उसके ही भृत्य समझे जाते थे। अधिकांश कर्मचारी अपने स्वार्थ लाभ केलिए मातृभूमि का महत्व भूलकर अंग्रेज़ों की आज्ञाओं का पालन करने के इच्छुक थे। नाटक में जिल्लाधीश विश्वेश्वरदयाल भी ऐसा आज्ञापालक कर्मचारी है। मनोहर की मृत्यु का असर उस पर भी पडता है और उसका देशप्रेम जागने लगा। वह अनुभव करता है कि ''अपने देशवासियों, न्याय परायण देशवासियों और फिर मनुष्यता की दृष्टि से निशस्त्र मनुष्यों, स्त्रीयों और बच्चों को जैलों में ठूँस कर, लाटियाँ मारकर और गोली का निशाना बनाकर पन्द्रह सौ रुपया महवार पाने की अपेक्षा पन्द्रह रुपये महीने पर गुज़र कर लेना कहीं अच्छा है।''[१] वह नौकरी से इस्तीफा दे देता है। लेकिन त्रिभुवन का मन नहीं बदल गया। वह कहता है कि सारे विबय पर सिद्धान्त स्वातंत्र्य की दृष्टि से विचार करना होगा।

सेठजी ने त्रिभुवन के इस अस्वाभाविक आचरण की असंगति पर विचार किया है। उनके अनुसार जिसके हृदय में घृणा और हिंसा होती है वह पहले

---

१. सिद्धान्त स्वातंत्र्य, सेठ गोविन्ददास - पृ. ७७

तो दूसरों को घृणा की दृष्टि से देखता है और फिर बाद में अपनों की हिंसा कर बर्बाद होता है। त्रिभुवन अंग्रेज़ों से घृणा रखनेवाला था, अतः अब अंग्रेज़ द्रोही से वह प्रतिक्रियावादी बना। गाँधीजी ने भी अंग्रेज़ों का विरोध किया किन्तु वे अंग्रेज़ से घृणा नहीं करते। वे उनके भ्रष्ट शासन के साथ असहयोग करते थे। उसी तरह वह गुप्त संगठनों तो ध्वस्त कर देते थे। सेठजी ने त्रिभुवन और मनोहर द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन के दो भिन्न पहलुओं को दिखाया है। त्रिभुवन जवानी में आतंकवाद का समर्थक था। उसने उसे घृणा की सीख दी। मनोहर तो अहिंसावादी है। वह घृणा नहीं जानता। अतः जहाँ त्रिभुवन अपने पिता को देश प्रेम का पाठ पढाने में असमर्थ रहा वहाँ मनोहर सक्षम निकला।

इस नाटक में सेठजी ने हिंसा, अहिंसा, आतंकवाद और सविनय अवज्ञा के द्वन्द को प्रस्तुत करके बताया है कि जहाँ हिंसा पराजित होती है, वहां अहिंसा विजयिनी और जहाँ आतंकवाद असफल होता है वहाँ गाँधीवाद सफल। सेठजी की मान्यता है कि आतंकवादी आन्दोलन से राष्ट्र की स्वतंत्रता की लडाई में सफलता नहीं पा सकती।

अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त युवा पीढ़ी के बदलते विचार को भी नाटककार ने प्रस्तुत किया है। पाश्चात्य संस्कृति के आन्धानुकरण के कारण वे अपने घर और परिस्थिति से नफरत करने लगते है। उन्हें तो होस्टल की सुख सुविधाएं पसन्द है घर का खाना अच्छे नहीं लगते। युवा पीठी की यह मानसिकता आधुनिक भारतीय जीवन की एक समस्या ज़रूर है।

राष्ट्रीय आन्दोलन, सामाजिक परिस्थिति और आहिंसावाद की प्रमुखता आदि के कारण इस नाटक को सामाजिक राजनीतिक समस्या नाटक कह सकता है।

इस नाटक में सेवा का प्रशस्त पथ ढूँढने का प्रयास सेठजी ने किया है।

सेवा-पथ

इस नाटक में सेवा का प्रशस्त पथ ढूँढने का प्रयास सेठजी ने किया है। तीन मित्र राष्ट्र की सेवा करना चाहते है। श्रीनिवास पूँजीपति है और इससे उद्योग धन्धों का विकास करके वह देश को संपन्न करना चाहता है। शक्तिपाल तो मार्क्सवाद ने झोंकों में पड कर समाजवादी हो गया है। वह भारत में समाजवाद की स्थापना करना चाहता है। लेकिन देश की परिस्थितियाँ इसके अनुकूल नहीं है। देश में साम्राज्यवादियों का शासन चल रहा है। शक्तिपाल विश्वास करता है कि निकट भविष्य में समाजवाद की प्रतिष्ठा बढेगी और भारत में भी उसकी स्थापना होगी। अब तो वह प्रान्तीय क्षेत्र के कौंसिल में मन्त्रि बनकर देश सेवा करना चाहता है। समाजवादी शक्तिपाल और पूँजीवादी श्रीनिवास में कोई अन्तर नहीं है। शक्तिपाल भी स्वार्थत्याग करना नहीं चाहता। वह मसाज में सबकी आय समान बनाना चाहता पर अपनी आय कम करना नहीं चाहता। इससे स्पष्ट है वह समाजवाद के प्रति पूर्ण निष्ठा नहीं रखता है। दीनानाथ का आदर्श है कि स्वार्थ का त्याग करना ही श्रेष्ठता है। स्वार्थ से अहंकार और अहंकार से अत्याचार का जन्म होता है। दीनानाथ जानता है ये पूँजीवादी या समाजवादी देश की सेवा न करनेवाले है। शर्किपाल समाज वाद के सिद्धान्तों का प्रचार करके जनता की भावना को अपने अनुकूल बनाकर कौंसिल का चुनाव जीता है। किन्तु यह तो सिद्धान्त का विजय नहीं, श्रीनिवास जनता को वश में डालने केलिए शक्तिपाल के नारों की सहायता लेता है। अतः वह पैसे खर्च करके पूँजीवाद की जडों को मज़बूत बनाता है।

शक्तिपाल तो ईमानदार है, सेवा की निष्ठा भी है। किन्तु सेवा का सच्चा पथ उसे मालूम नहीं। दीनानाथ जानता है कि मन्त्रिपद शक्तिपाल का क्रान्तिकारी

व्यक्तित्व के अनुकूल नहीं है। दूसरे चुनाव में शक्तिपाल की हार होती है। ....इससे दो बात स्पष्ट हो जाती है। पहला विजय तो समाजवाद की नहीं थी और शक्तिपाल जौसे ईमानदार व्यक्ति दलगत राजनीति में सफल नहीं हो सकते। वहाँ ऊँचे आदर्श और विशुद्ध सेवा असफल ज़रूर होते है।

इन तीनों मित्रों में केवल दीनानाथ ही सेवा का सच्चा पथ जानता है। वह गाँधीजी के कार्यक्रम को निष्ठापूर्वक स्वीकार कर रखा है। उसका विश्वास है कि यदि स्वार्थ को छोड दे तो बिना शासन के भी देशसेवा संभव है। नाटककार ने दीनानाथ के माध्यम से बताया है कि देश-सेवा केलिए मुहूर्त खोजने की ज़रूरत नहीं है और न सुविधाओं की अनुकूलता की अनिवार्य है। सेवा और अहिंसा का आदर्श तो ज़रूर चाहिए।

'सेवा पथ' में सेठजी ने विवाह-समस्या को भी उठायी है। शक्तिपाल हिन्दू विवाह व्यवस्था के विरोधी है। वह हिन्दुस्तानी लडकियों की अपेक्षा यूरोपीय लडकी को पसन्द करता है क्योंकि उनमें ब्यूटी, इन्डलेक्ट, एजुकेशन और रिफाइनमेन्ट है। किन्तु उसकी विलायती पत्नी मार्गरेट उससे विश्वासघात करके श्रीनिवास के धन के पीछे जाती है। और जब श्रीनिवास की संपत्ती नष्ट हो जाती है तो वह उसे भी छोड जाती है। इस घटना की प्रस्तुति द्वारा नाटककार ने बताया है कि विलायती औरत हिन्दुस्तानी पुरुष के लिए अनुकूल नहीं है।

देश में चलनेवाला मज़दूरों के आन्दोलन का भी चित्रण नाटक में है। नाटककार बताता है कि मज़दूर नेता भी स्वार्थरत है जो चुनाव में सहायता देने के बदले शक्तिपाल से मोटी रकम माँगता है।

गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम को नाटककार प्रशस्त सेवा मानता है। सेवा के विभिन्न पहलुओं की समस्या का उसने समाधान भी प्रस्तुत किया है, जो स्वयं उसके आदर्श में अनुरूप है। दीनानाथ तो इसके प्रतीक पात्र है। यह समाधान तो आदर्शवादी ढंग का है।

पृथ्वीनाथ शर्मा

बहुमुखी प्रतिभा संपन्न लेखक है पृथ्वीनाथ शर्मा सामाजिक नाटकों को सरल एवं स्वाभाविक शैली में उन्होंने प्रस्तुत किया। उनके समस्या नाटक है 'साध' और 'दुविधा'। दुर्बल कथानक और निर्जीव पात्र उनकी कमज़ोरियाँ है। सिर्फ समस्या उद्‌घाटन और सिद्धान्त प्रस्तुति केलिए ही पात्रों की सृष्टि हुई है।

साध

आधुनिक युग की नारी, स्वतंत्रता की मोही होने के कारण अविवाहित रहना चाहती है। वह सोचती है कि दांपत्य जीवन गुलामी है। वह पति के अधिकार को मान नहीं सकती। 'साध' नाटक में पृथ्विनाथ शर्मा ने ऐसी एक नारी की प्रस्तुति की है जो विवाह करके अपनी स्वच्छन्दता खो देना नहीं चाहती। कुमुद का विचार है कि शादी के बाद पुरुष नारी को सिर्फ अपना अधिकार स्थापित करने और बच्चे पैदा करने का साधन समझेगा। किन्तु कुमुद को चाहनेवाला अजित यह कहकर उसको अपनी बनाता है कि कभी भी उसे गुलाम नहीं बनायेगा और माता बनने केलिए बाध्य भी नहीं करेगा।

कुमुद की माँ की राय थी कि प्रेमी के हृदय की निर्मलता को महत्व देना चाहिए। अतः कुमुद अजित के हृदय सौन्दर्य पर अर्पिता होकर उसकी पत्नी बनती है। अजित अपनी पत्नी की भावनाओं को तनिक भी ठेस पहुँचाना नहीं

चाहता और माँ बनने केलिए उस पर दबाव भी नहीं डालता। समय बीतने पर कुमुद अजित के विचारों से प्रभावित होने लगी। उसको लगा कि उसकी खुशी में किसी अभाव का एहसास है। उसको अपनी माँ का कथन बिलकुल सही लगता है कि इस मायामय संसार में बच्चे ही यथार्थ है, सत्य और सुन्दर है। इसलिए झूठी चमकवाली सभ्यता के मोह में फँसकर बच्चों से विमुख न होना है।

सोच-विचार के बाद आखिर वह अजित के बच्चों की माँ बनने की इच्छा प्रकट करती है। वह पति परायण पत्नी तथा ममतामयी मां बनती है। सन्तान की देख-भाल ये बचने केलिए अपनी काम पिपासा को दबाने के कारण उसकी ज़िन्दगी असफल थी। मगर अजित के अटूट विश्वास और प्रेम तथा दूरदर्शता के कारण कुमुद की समस्या का सफलतापूर्वक समाधान हो गया।

दुविधा

जब शिक्षित नारी पाश्चात्य संस्कृति में पूर्ण रूप से डूब जाती है तो वह अपनी सांस्कृतिक चेतना को विस्मृत कर बैठती है। सामाजिक मान्यताओं, रीतियों, नीतियों, नैतिकता और सेक्स की धारणाओं को लेकर उसकी मान्यताएँ बदलती है। इनकी मानसिकता हमेशा डगमगाती रहती है, अतः दुविधा में फंसती रहती है। प्रस्तुत नाटक में सुधा नामक पढी लिखई युवती केलिए प्रेम मात्र मनबहलाव की चीज़ है।

सुधा प्रेमि को खिलौता मानती है। उसके प्रेम की अवधि क्षणिक है, जब उसका मन दूसरे व्यक्ति की ओर झूक जाता है तो वह पहलेवाले को छोडती है। अपनी योग्यता एवं सौन्दर्य के अहंकार में सच्चे प्रेम पहचानने की शक्ति वह खो गयी है। वह केशव से प्रेम करती है जो विलायत में बैरिस्टरी पढनेवाला है।

केशव तो सुधा से वास्तविक प्रेम नहीं करता, वह सुधा के पिता की संपत्ति का लोभी है। सुधा कोरी भावुकता के कारण उसको अपने योग्य समझती है। केशव का मित्र विनय जानता है कि केशव धूर्त एवं अर्थलोभी है। विनय भी सुधा को चाहता है। वह सुधा को केशव की असलियत का पता देने से हिचकता है क्योंकि ऐसा करें तो उसका स्वार्थ माना जाएगा।

सुधा केशव के साथ घूमने फिरने को चली जाती है। फिर जब विवाह का प्रश्न आया तो वह दुविधा में पड गयी। सुधा का पिता राजेश्वर ने उसे तार्किक दृष्टि से विचार करने की प्रेरणा दी। किन्तु सुधा की अन्तरात्मा ने आज्ञा दी की केशव से विवाह करना ठीक नहीं। असमंजस में पडी सुधा के सामने केशव की परित्यक्ता पत्नी मोहिनि और बच्चा आ जाते है। केशव ने अपने ससुर से विलायत की पढाई के खर्च न मिलने के कारण अपनी पत्नी का परित्याग किया था। केशव का असली रूप देखकर सुघा उसे घृणा करने लगी।

केशव के प्रति घृणा सुधा को विनय की ओर मुडने की प्रेरणा देती है।किन्तु विनय जानता है कि सुघा और उसके बीच आर्थिक स्थिति में बहुत बडा अन्तर है। सुधा कभी भी विनय के साधारण जीवन में खुशी नहीं प्राप्त कर सकती। वास्तव में सुधा का विनय के प्रति झुकाव प्रेम ही नहीं, परिस्थितियों से समझौता है। विनय केलिए विवाह दो हृदयों का लेन देन है, अनन्त वर्षों केलिए दो आत्माओं का सम्मिलन है। यह सुघा के साथ संभव नहीं। अतः विनय उसे शादी करना नहीं चाहता।

उपेन्द्रनाथ अश्क

समस्या नाटक के क्षेत्र में उपेन्द्रनाथ अश्क की देन महत्वपूर्ण है। प्रसादोत्तर काल में समस्या नाटकों का नई दिशा की ओर जो उत्थात हुआ, अश्क उसके प्रमुख प्रतीक एवं स्तंभ माने जाते है। अश्क का पदार्पण नाट्य साहित्य में तब हुआ था जव भारतीय समाज एक संक्रान्तिकाल में था। देश में क्रान्तिकारी परिवर्तन के अनुकूल परिस्थितियाँ थी। भारतीय जनता पाश्चात्य संस्कृति के अन्धानुकरण करते रहे थे। जनता बाह्याडंबरों में पागल हो गयी थी। पाश्चात्य जीवन व्यवस्था अपनाने की कोशिश में हमारे समाज उथल-पुथल हो गया और इसी कारण से कई समस्याएं भी उत्पन्न हुई।

नई बौद्धिकता से प्रभावित मध्यवर्गीय समाज और उसके जीवन तथा समस्याओं को अश्क ने अपने नाटकों में उभारा है। इस पर प्रकाश डालते हुए नन्ददुलारे वाजपेयी लिखते है - ''मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन की जितनी अंदरूनी और यथातथ्य जानकारी अश्क की कृतियों में व्यक्त हुई है, अन्यत्र नहीं मिलती।''[१] अश्क के प्रमुख समस्या नाटक है, 'अलग-अलग रास्ते', 'स्वर्ग की झलक', 'अंजो दीदी', 'कैद', 'उडान', 'भैवर' और 'छठा बेटा।'

अलग-अलग रास्ते

विवाह और प्रेम की समस्याओं के ज़रिए नारी की सामाजिक प्रतिष्ठा का सवाल अश्क ने उठाया है। सामान्यतः ऐसा माना जाता है कि लडकी, परिवार या समाज के हितानुसार जिये। अपना कोई निर्णय लेने और कार्य

---

१. नया साहित्य नये प्रश्न, नन्ददुलारे वाजपेयी - पृ. १९

करने का अधिकार उसको नहीं है। किन्तु आधुनिक नारी यह मान नहीं सकती, परिवार की मिथ्या प्रतिष्ठा केलिए, वह अपनी बर्बादी नहीं करना चाहती। जो अपने अधिकारों पर बाधा डालता है उससे वह विद्रोह भी करती है। अपनी ज़िन्दगी खुद चलाने की शक्ति आधुनिक नारी में है।

इस नाटक के पति परित्यक्ता रानी पिता की सहायता नहीं चाहती। वह पिता से कहती है - ''न मैं उनका घर चाहती हूँ, न आपका मकान।''[१] कार और मकान न देने के कारण पति ने उसका त्याग किया था। जब रानी के पिता कार और मकान का वादा देता है तो वह रानी को स्वीकार करने आया। किन्तु जो पति उसको सम्मान नहीं देता, उसको इनकार करने में रानी हिचकती नहीं। यह आधुनिक शिक्षित नारी की शाक्ति है।

रानी के पति त्रिलोक अपनी कमज़ोरी छिपाने केलिए संयुक्त परिवार की असुविधाओं की ज्ञात कहता है। रानी जानती है कि उसका पति लोभी है। अतः वह पति के साथ जाना नहीं चाहती, उसकी लोलुपता कभी कम नहीं होगा। उसको भर देने में पिता असमर्थ भी होगा। उसके पिता ताराचन्द उसे पतिव्रता धर्म के उपदेश देता है। रानी इसका विरोध करती है। वह मानती है - ''आज धर्म अमानवीय बन गया है। धर्म के नाम पर पुरुष नारी को दासी बनाये है।''[२] और वह जानती है कि पिता भी पुरुषों के धर्म की बातें कहता है।

प्रगतिशील नारी की प्रतिनिधि रानी अपने व्यक्तित्व के प्रति सजग रहती है। वह पुरुष से समानाधिकार चाहती है और पति का प्रेम और आदर चाहती है। त्रिलोक ने उसका अपमान किया, कभी भी उसका नारीत्व का सम्मान नहीं

---

१. अलग अलग रास्ते, उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. ११०

२. हिन्दी के समस्या नाटक, उमा शंकर सिंह - पृ, ११४

किया। प्राचीन संस्कार और रूढ़ियाँ नारी को अपने अधिकारों से कोसों दूर भटकाते हैं। इसलिए नारी को अपना हक माँगने केलिए संघर्ष करना पडता है। रानी उच्च शिक्षित भी नहीं, फिर भी उसका साहस और प्रगतिशील विचार भारतीय नारी को अप्राप्य है।

रानी को प्रेरणा देनेवाला, उसका भाई पुरन है। वह नाटककार के आदर्श का प्रतिनिधित्व करता है। वह मानता है कि दांपत्य जीवन में आपसी सहयोग और समझौता प्रमुख है। स्त्री, पुरुष का साथी है, दासी नहीं, साथ निबाहने की ज़िम्मेदारी दोनों पर है। पूरन के विचार में तय किये विवाह के बिगट जाने की संभावना है, क्योंकि वे सन्तानों के विकार-विचारों को नहीं समझते। वास्तव में लडके लडकी का आपस में पहचान होना ज़रूरी है।

हमारा समाज मिध्या गर्व और अहंकार में पडकर खोखला होता जा रहा है। नाटक में रानी के पिता ताराचन्द अपने ब्राह्मणत्व पर गर्व करता है। उसकी राय में पति के विरुद्ध सोचना चंडाल का कर्म है। ब्राह्मण का नहीं। अतः वह बेटियों को उपदेश देता है कि पति का अनुसरण करना उनका धर्म है। रानी की बहिन राज पिता के उपदेश पर जीनेवाली है। उसका पति मदन उसे छोडकर पुरानी प्रेमिका को स्वीकार करने को तैयार है। मदन ने माँ - बाप की ज़बरदस्ती से विवश होकर पहली प्रेमिका का त्याग किया था। किन्तु मदन राज को प्यार नहीं कर सका, तो वह अपनी प्रेमिका के पास वापस जाना चाहता है। किन्तु राज उसको छोडकर ससुराल से लौट आना नहीं चाहती। पुरानी संस्कृति और रूढियों पर वह विश्वास रखती है। पति की सेवा को वह अपना अधिकार समझती है। वह मदन से कहती है - ''मेरा भी अधिकार है, में

आपकी परिणीता हूँ। इतने ब्ररातियों के सामने यज्ञ की अग्नि को साक्षी करके आप मुझे व्याह लाए है।''[१]

नारी के दो विभिन्न रूप यहाँ प्रस्तुत है। रानी अपने स्त्रीत्व का अपमान करनेवाले पति को छोड देती है तो राज अपमान गुल्कर, पति की दूसरी शादी के बाद भी, साथ रहना चाहती है। वेवाहिक संबन्ध तो युवक-युवतियों के इच्छानुसार नहीं होते, मता-पिता अपने हितानुसार निर्णय लेते है। पुरानी पीढी, नवीन भाव विचारों को कभी भी समझ नहीं पाती। वे केवल आर्थिक एवं सामाजिक प्रतिष्ठा पर ध्यान देती है। अपनी अभिलाषाओं से वंचित पति-पत्नी का जीवन ज़रूर विषम बनेगा। पूरन कहता है ''व्याह तो आजकल अन्धेरे में तीर मारने के बराबर है। निशाने पर लग गया तो ठीक, हाथ से निकला तीर तो वापस आता नहीं।''[२]

पुरन विश्वास करता है कि यदि पत्नी के होते हुए भी पति दूसरा विवाह कर सकता है तो स्त्री भी दूसरा विवाह कर सकती है। अतः वह पिता से कहता है राज की दूसरी शादी हो सकती है। वह राज की समस्या का बुद्धिवादी समाधान प्रस्तुत करता है। राज और पिता इसके अनुकूल नहीं है। रानी तो पुरन के आदर्शों को मानती है। वह अपने पैरों पर खडे रहना चाहती है। वह पति को छोडकर जीना पसन्द करती है। पूरन ने उसका समर्थन भी किया। पिता और राज के विचारों से मेल न खाने के कारण पूरन और रानी अलग रास्ता चुनकर चले जाते है। राज और रानी विरोधी संस्कारों के प्रतिनिधि है, अतः उनके रास्ते अलग-अलग ज़रूर है।

---

१. अलग अलग रास्ते, उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. ५३

२. वही पृ. २९

स्वर्ग की झलक

मानव को अन्धानुकरण से बचाना इस नाटक का उद्देश्य रहा है। नाटक की मूल समस्या विवाह की है और आधुनिक शिक्षा के प्रभाव का दिगदर्शन भी कराया गया है। उच्च शिक्षित नारी फैशनपरस्त और अधिकार की प्यासी बन गयी है। नवयुवक शिक्षित युवती की बाहरी टीमटाम देखकर समझने लगता है कि उसके साहचर्य से जीवन स्वर्ग बन जाएगा, किन्तु उसके साथ दांपत्य जीवन शुरू करने पर उन्हें वास्तविक चित्र मिलता है।

रघू एक विधुर युवक है जिसके समक्ष यह प्रश्न है कि वह उमा से विवाह करे जो उच्च शिक्षित युवती है या भय्या के उपदेशानुसार सामान्य पढी-लिखी गृह कार्य में दक्ष अपनी साली रक्षा से विवाह करे। रघु का भाई गिरधारीलाल पुराने विचारों के प्रतिनिधि पात्र है। वे पुराने संबन्धियों को अधिक महत्व देते है और बेटे की भलाई की दृष्टि से रघु और रक्षा के संबन्ध को उपयुक्त समझते है। रघु की भाभी, जिसने परिवार का कार्यभार संभालते हुए उच्च-शिक्षा प्राप्त करली है, उमा को रघु के उपयुक्त समझती है।

रघु बाह्य प्रसाधनों और आधुनिक संस्कार से विभूषित उमा की ओर आकर्षित है। अनपढ रक्षा को पत्नी बनाने की इच्छा उसमें नहीं। गृहकार्य की दक्षता को वह कम महत्व देता है। उसके मित्र अशोक तथा राजेन्द्र की पत्नियाँ उच्च शिक्षित आधुनिक युवतियाँ है। रघु भी उनकी तरह के सुशिक्षित लडकी चाहता है। उमा को वह इसीलिए चाहता है। किन्तु अपना विचार व्यक्त करने में वह सक्षम नहीं है।

इसी वक्त, एक बार वह अशोक के यहाँ दावत केलिए चला जाता है। अशोक और राजेन्द्र की उच्च शिक्षित पत्नियों की वास्तविकता देखने का अवसर उसे मिला। श्रीमति अशोक घर का काम न करने केलिए रोग का बहाना बनाती है। वह कहती है बच्ची को दूध पिलाने केलिए रात में दो बार उठना पडा जिससे उसकी तबियत खराब हो गयी। घर का काम करने में अशक्त वह नृत्य देखने केलिए चली जाती है। श्रीमती राजेन्द्र अपने ज्वर से पीडित बच्चे को छोडकर नृत्य केलिए चली जाती है। जाते समय वह पति से कहती है - ''मेरी चिन्ता आप न कीजिएगा, रात मुझे देर हो जाएगी। शाम का खाना मिसेज़ दयाल के यहाँ खा लूंगी और बच्चे का ध्यान रखियेगा। सूचना देना मुझे न भूलियेगा। मुझे चिन्ता रहेगी।''[१] यह कथन आधुनिक नारी की दायित्व हीनता का प्रमाण है।

अशोक और राजेन्द्र ने विवाह के पूर्व इन्हीं आधुनिक नारियों के साथ ही ज़िन्दगी को स्वर्ग समझाथा। आज वह उन्हें बिलकुल नरक सा लगता है। इन उच्च शिक्षित युवतियों का बर्ताव देखकर रघु के विचारों में परिवर्तन होता है। वस्तुस्थिति से अवगत हो जाने के बाद उसकी स्वर्ग की कल्पना बिखर पडी। उसने समझ लिया कि वह स्वर्ग उसका एक रंगीन भ्रम है। रघु की भाभी सन्तुलित बुद्धि की उच्च शिक्षित नारी है। भाभी का कहना है कि ''एकता अच्छी है, पर स्वजन की आत्मा को बन्दी बनाकर उसे प्राप्त करना अच्छा नहीं है।''[२] उसकी मान्यता है कि स्वार्थ केलिए किसी के जीवन के साथ खिलवाड नहीं करना चाहिए। जीवन में हर पल मनुष्य को सोच सझकर काम करना है। शादी जैसी बातों में उदासीनता नहीं बरतनी चाहिए। इसलिए रघु की भाभी, प्रयत्न करके अपने पति से रघु और उमा के संबन्ध केलिए स्वीकृति ले लेती है।

१. स्वर्ग की झलक, उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. ६४
२. वही पृ. ७८

गिरधारीलाल शिक्षा को बुरा नहीं मानता, किन्तु आधुनिक शिक्षा का जो बुरा प्रभाव लडकियों पर पडा है उसका वह विरोध करता है। उनका विचार है ''अधिक पढ लिख कर आदमी को और भी सीधा-सादा जीवन व्यतीत करना सीखना चाहिए, जितना भरे उतना भारी होता जाय पर आजकल लडकियाँ जितना अधिक पढती है, उतनी ही छिछली होती जाती है।''[१] गिरधारीलाल आधुनिकता के छिछलेपन से भयभीत है, शिक्षा से नहीं। रघु की भाभी, उमा से अपना जैसा बर्ताव की अपेक्षा रखकर, उससे शादी करने की प्रेरणा देती है।

रघु को नृत्य देखने जाने पर आधुनिक युवतियों की असलियत का पता चला। उमा को भी उसने वहाँ देखा। उमा अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है, किन्तु कर्तव्य की परवाह नहीं करती। उसकी दृष्टि में पतिव्रता धर्म, सेवा और त्याग का कुछ भी मूल्य नहीं है। उसकी ज़िन्दगी का ध्येय केवल किसी स्वार्थों एवं अभिलाषाओं की पूर्ति है।[२] रघु घर लौटने पर भैया और भाभी से कहता है कि वह जीवन संगिनी चाहता है, तितली नहीं। उमा को स्वीकार करने में वह असमर्थता व्यक्त करता है। अधिक पढ़ी-लिखी लडकी से विवाह करने के लिए पुराने संस्कारों को सर्वथा त्याग देना पडता है और वह अभी तक ऐसा नहीं कर सका है। अतः वह रक्षा से विवाह करने का निर्णय लेता है।

इस नाटक में उन उच्च शिक्षित युवतियों पर व्यंग्य किया है जो अधिकार प्राप्ति के लिए अहंवादी बनकर अपने कर्तव्य की अपेक्षा करती है और पारिवारिक सुख-शान्ति को नष्ट कर देती है। अनिश्चयतावादी युवकों पर भी व्यंग्य है, जो सोचने-समझने में असमर्थ रहकर कुछ न कुछ कर डालता है।

---

१. स्वर्ग की झलक, उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. ९९

२. हिन्दी के समस्या नाटक, उमाशंकर सिंह - पृ. १०९

श्रीमती अशोक और श्रीमती राजेन्द्र के आधार पर पढी-लिखी लडकियों के विरुद्ध गलत धारणा बनाकर रघु का रक्षा से विवाह करना इसका प्रमाण है। उच्च शिक्षित नारियों को दायित्वहीन स्थापित करना नाटककार का उद्देश्य नहीं। उसकी कल्पना है कि उच्च शिक्षित स्त्रीयाँ श्रीमती अशोक और श्रीमती राजेन्द्र जैसी न होकर रघु की भाभी जैसी हो और युवकों को पूर्वाग्रह के कारण पथभ्रष्ट होने से अपने को बचाना चाहिए। नाटक की भूमका में अश्क ने लिखा है कि ''नाटक का उद्देश्य शिक्षा अथवा आधुनिक नारी के विरुद्ध न होकर, उस मनोवृत्ति के विरुद्ध होना है जो हमारे यहाँ की अधिक शिक्षित लडकियों में पैदा होती जा रही है कि वे अपना बाहर संवारने के जोश में घर विगाडती जाती है। आज प्रत्येक शिक्षित लडकी केलिए शिक्षित, पूर्ण रूप से आधुनिक, साथ ही धनी पति का मिलना कठिन है ....तब यदि उसे विवाह करके सीधा-सादा जीवन बिताना है, तो उसे इस सीधे सादे जीवन पर नाक-भौंह न चढानी चाहिए।''[१]

शिक्षा तो जीवन को उन्नत बनाने का साधन है। जीवन को स्वर्ग बनाना चाहे तो शिक्षा का सदुपयोग किया जाना चाहिए, नहीं तो शिक्षित नारी अच्छी गृहिणी नहीं बन सकती। नाटककार की धारणा है कि जब नारी शिक्षित होकर स्वाभिमान, आत्मविश्वास, व्यापक ज्ञान तथा समाज-सेवा की भावनाएँ ग्रहण करने के साथ अपना सन्तुलन भी स्थिर रखेगी, तभी स्वस्थ समाज का निर्माण हो सकेगा।[२] उच्छृंखलता का सारा दोष शिक्षा पर नहीं, रघु की भाभी शिक्षित होते हुए भी अच्छी गृहिणी है।

---

१. स्वर्ग की झलक, उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. १०

२. वही पृ. ११

रघु का रक्षा से विवाह करने के निर्णय को हम सर्वथा उचित नहीं कह सकता। सभी अशिक्षित लडकी अच्छी और सभी शिक्षित लडकी बुरी नहीं होती। पढी-लिखी लडकी जीवन की वास्तविकता को अधिक समझ सकती है, वह पति की सहायता भी कर सकती है। प्राचीन काल की नारी अपने अधिकार के प्रति उदासीन रही आधुनिक लडकी अपना कर्तव्य के प्रति उदासीन रहती है। ये दोनों प्रवृत्तियाँ धातक है। अधिकार के प्रति सजग नारी को अपने कर्तव्य के प्रति भी सजग बनना चाहिए। शिक्षा का प्रमाण विवेक और दूरदर्शिता होना चाहिए, सिर्फ फेशन परस्ती नहीं।

अंजो दीदी

अश्क के 'अंजो दीदी' नाटक की समस्या का केन्द्र है, अभिजात वर्ग का एक परिवार। अंजो परिवार के सदस्यों को अपनी ज़िन्दगी जीने नहीं दे रही है। वह घर के सभी व्यक्तियों पर अपने संस्कार जिसकी विरासत अपनी मांर्बिड और जुल्मी नाना से पायी थी, लादे जा रही है। वह नहीं समझती है कि हर व्यक्ति का अपना संस्कार है। अंजो का भाई श्रीपत जानता है कि व्यक्ति के विकास केलिए यह ज़रूरी है कि आदमी को अपने ढंग से जीवन निबाहने की सहूलियत हो। इस नाटक में दो आदर्श परस्पर टकराते है। अंजो और श्रीपत के नानाजी का, जिसकी विरासत अंजो को मिलती है और फिर ओमी उस परम्परा को प्राप्त करती है। यह आदर्श व्यक्ति को मशीन का पुर्जा बना देता है। दूसरा आदर्श है श्रीपत का, जिसके अन्तर्गत सब को अपनी ज़िन्दगी जीने का अधिकार है।

अंजो के नानाजी के जीवन विषयक निश्चित आदर्श थे, निश्चित मान्यताएँ थी। अंजो को नानाजी से उसके स्वाभाविक गुण मिला है। दूसरों पर छा जाना, उसकी आदत बन गयी है। वह अपने परिवार को सिर्फ अपनी मर्जी से चलाना चाहती है। उसका पति इन्द्रनारायण वकील है, जो, विवाह के पहले हंसमुख व्यक्ति था, जो जी चाहे वह करता था। विवाह के बाद वह बिल्कुल बदल गया है। अब वह अंजो के कहने के अनुसार नहाता है, खाता है, कपडा बदलता है, उसका हँसना भी बन्द हो गया है। अब वह अंजो रूपी इंजिन खींच लेनेवाली रेलगाडी का डिब्बा बन गया है।

अंजो के नानाजी कहना महना है कि वक्त की पाबन्दी सभ्यता की पहली निशानी है। अँजो ने इसके अनुसार खाने, नहाने का नियम बना लिया है। बेटे नीरु को सिखाया गया है कि उसे समय पर पढना है, समय पर आराम करना है और समय पर खेलना है। इस प्रकार अंजो ने अपने घर को घडी जैसा बनाया है। वह सबको घडी के पुर्जा मानती है। अंजो का नानाजी कहा करते थे - ''सुघडापा स्त्री का गहना है।''[१] इसलिए अंजो अपने घर को घडी की तरह संभालने में गर्व करती है। ''घर के कण-कण को उसने वक्त की पाबन्दी और सभ्य लोगों की तौर-तरीके सिखाये हैं।''[२]

अंजो अपने नौकरों को सदा साफ सुधरा रखती है। क्योंकि नानाजी का आदर्श था कि मालिकों के स्तर का पता नौकरों के पहनावे से लगता है। इस कारण से अनिमा उस घर के नौकरों को देखकर अंजो के रिश्तेदार समझती है।

---

१. अंजो दीदी, उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. २९

२. हिन्दी के समस्या नाटक, विनयकुमार - पृ. २९३

बेटे को पालने में भी अंजो ने अपने नानाजी का उपदेश स्वीकार किया। इसलिए अंजो ने अपने बेटे पर ऐसी आदत डाल है कि वह अपने ही कमरे में सोता है, अपनी ही कंधी से बाल बनाता है, अपनी ही मेज़ पर नाश्ता करता है, अपनी अलमारी में कपडा रखता है। वह अपने सब काम खुद करता है।

अंजो का एक भाई है बिल्कुल सैलानी आदमी, बोहीमियन टाइप। अंजो के घर उसके आने की खबर है। लेकिन अंजो जानती है कि श्रीपत वक्त का पाबन्दी नहीं है। अतः अंजो विश्वास नहीं करती कि वह आये। किन्दू इस बार श्रीपत आ जाता है। आते ही अपने जीजाजी को ने गले लगता है। अंजो कहती है ''क्या कर रहे हो श्रीपत? धूल और पसीने से तुम्हारे कपडे गच हो रहे हैं और तुम लिपट जा रहे हो इनसे, चलो, नहाओ, कपडे बदलो''[१] श्रीपत अंजो की व्यवस्था के विरोधी है। उसको लगा कि उसकी बहन ने सारे घर ने जड यान्त्रिक बना दिया है। अंजो भी श्रीपत की आदतों का विरोध करती है। श्रीपत खाने की मेज़ पर बैठकर पसीना सुखाता है, अंजो के सामने ही कुरता उतारकर बैठा हुआ है, इस तरह नंगे बदन रहने और वह भी एक औरत के सामने उसे शर्म भी नहीं आती। श्रीपत का विचार है कि अंजो की इस यान्त्रिकता के कारण उसका जीजाजी हाईकोर्ट का जज दिखाई पड रहा है, किन्तु असल में वह एड्वकेट भी नहीं हुआ रहा। श्रीपत जानता है कि वकील जवानी का प्रतीक है और जज बुढापे का।[२] शादी के बाद इन्द्रनारायण बदल गया है। श्रीपद अपने जीजाजी की दशा देखकर समझ गया है कि आचार-व्यवहार के सभी कानून-कायदे शादी शुदा लोगों के अघेड दिमागों की उपज

---

१. अंजो दीदी, उपेन्द्नाथ अश्क - पृ. ३३
२. वही पृ. ३८

हैं। इसलिए श्रीपत शादी की कल्पना से आनन्द लेता है, उसके बन्धन में नहीं फँसता। श्रीपत ने देखा कि अंजो की सनक ने इन्द्रनारायण का जीवन रस तो सोख लिया है, वह अपने बेटा नीरु को भी अपनी सनक का शिकार बना रही है।

अंजों का बेटा नीरज खुद क्रिकट का कप्तान बनना चाहता है। किन्तु अंजो आशा करती है कि वह डिप्टी कमिशनर बने। श्रीपत देखता है कि छोटे बच्चे पर पढाई का बोझ का पहाड टूट पडा है। वह इस स्थिति से विद्रोह करता है, नीरज को वह प्रेरणा देता है कि अपनी आकांक्षा की पूर्ति केलिए तत्पर हो। अंजो ने बेटे को सिखाया है कि बडों से बात करते वक्त आदर का संबोधन करना चाहिए। अतः नीरु हर बात से 'मामाजी', 'मामाजी' कहता है। श्रीपत उसे समझाता है कि यदि इसीतरह हर बात में 'जी कहता रहा तो फिर वह डिप्टी कमिशनर नहीं हो सकेगा, सरकार उसे पटवारी बना देगी। अंजो को यह सह्य नहीं है कि उसके बेटे का डिब्बा उसके इंजिन से न जुड कर श्रीपत से जा लगे। इसलिए वह नाराज़ होकर श्रीपद से कहती है - ''तुम चाहते हो कि मेरा बेटा भी तुम्हारी तरह आवारा हो जाय।''[१]

अंजो के घर के कायदे-कानून की पाबन्दी की कठिन शर्तें देखकर श्रीपत को ऐसा लगा कि उस घर के लोग अपनी ज़िन्दगी नहीं जीते। उनकी ज़िन्दगी पर अंजो के रूप में नानाजी की परंपरा हावी है। परिवार के व्यक्तियों पर अंजो ना दबदबा है। वह सबको अपनी लीक पर लिये जा रही है। लेकिन यदि एक क्षण को भी अंजो के बन्धन से घर का कोई छूट पाता है तो वह अंजो के विपरीत आचरण करना है। उसके पति जब एक पल को अंजो से मुक्त हुआ

---

१. अंजो दीदी, उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. ४४

तो सहज-भाव से श्रीपत की रुमानी ज़िन्दगी के रस की ओर मुड पडते हैं। श्रीपत इसे अपनी रेलयात्रा के बारे में बता रहा था। थर्ड क्लास के किसी डिब्बे में एक सुन्दर लडकी को देखकर वह सेकन्ड क्लास छोडकर वहाँ बैठ गया। इस प्रसंग में वकील साहब पूरी तरह रस लेता है और श्रीपत के साथ उत्सुकता से बातें करता है। किन्तु अंजली यह देखकर उसे डाँटती है तो वह धबराता है। किन्तु जब दूसरा क्षण अवसर निकाल पाते है तो श्रीपत से बह पूछता है - ''लेकिन भई, उस लडकी का क्या हुआ।''[१]

खाने की चीज़ों के निर्णय में भी अंजो का अपना आदर्श है। चाट, पानी के बताशे जैसे चीज़ निम्न स्तर के लोगों का खाना है। अतः अंजो उसे अपने घर में न लाती। लेकिन श्रीपत सब को यह खाने का आदेश देता है। अंजली चिढकर कहती है - ''दुनिया में तीन तरह के अदमी होते हैं। एक वे जो आप भी चलने है और दूसरों को भी चलाते है - इंजन की तरह। दूसरे वे, जो आप नहीं चलते, पर चलाओ तो चल जाते हैं - गाडी के डिब्बों के समान और तीसरे गये, जो न आप चलते है और न दूसरों को चलने देते है - ब्रेक की तरह। नानाजी कहा करते थे - श्रीपत ब्रेक है, ब्रेक।''[२]

श्रीपत असल ब्रेक ही है, उसके आने के बाद अंजो के घर की वह घडी चलना बन्द कर देती है, जिसकी टिक् टिक् पर घर के सदस्य चला करते है। दस बरस से बाकायदा इस घडी में अंजो चाबी देती रही है। आज वह भी इस पाबन्दी को बरत नहीं पायी। किन्तु उसके यहाँ श्रीपत के ब्रेक का काम का कोई फायदा नहीं। उसका घर घडी की तरह टिक्-टिक् करना चलेगा।

---

१. अंजो दीदी, उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. ५२

२. वही पृ. ६०

श्रीपत विद्रोही है। वह देखता है कि उसकी बहन ने अपने अनुशासन की कुरूप छाया सारे घर पर डाल रखी है, उसे विद्रोह करने की स्वाभाविक प्रेरणा मिल्ती है। वह अंजो के पति को समझाता है तो भी वह अंजो के इंजन से अटक रहनेवाला डिब्बा ही रहता है। इसलिए वह कचहरी में चोरी-चोरी शराब पीते है और घर में इस बात की खुशी मनाता है कि अंजो को उनसे कोई शिकायत नहीं। श्रीपत अपने भतीजे को मम्मी की तानाशाही के विरुद्ध विद्रोह करने की प्रेरणा देता है। इसके फलस्वरूप नीरज मामा को आदर्श बनाता है। वह बडा होकर स्वयं समझता है कि अंजो ही स्वयं ब्रेक थी। जब तक ज़िन्दा रही इस घर की ज़िन्दगी पर ब्रेक लगाये रहीं।

अंजो मर जाती है, लेकिन अपनी बहु के रूप में अपना प्रतिरूप छोड जाती है। ओमी भी अंजो के आदर्श का पालन अपना पवित्र दायित्व समझती है। जैसे अंजो नीरज को इंजिन से बाँध ले जाना चाहती थी, वैसे ही ओमी भी नीलू को अपनी मर्जी पर ले जाना चाहती है।

बीस वर्षों के बाद श्रीपत घूमता-फिरता फिर अंजो के घर आता है। उसे लगता है कि उसकी अंजो दीदी घर में अपना प्रतिनिधि छोड गयी है। ओमी को अंजो की परंपरा में देख कर श्रीपत को बरबस खाने की मेज़ पर सो जाने की लाचारी हो जाती है। वह कहता है - ''कसम ले लो, जो इन बीस बर्सों में कभी मेज़ पर सोया हूँ..... लेकिन यहाँ आ कर मालुम हुआ कि अंजो दीदी अपन। प्रतिनिधि छोड गयी, जो कुछ बातों में अंजो के भी कान काटती है तब न जाने क्या हुआ कि फिर वैसे का वैसा हो गया।''[१]

---

१. अंजो दीदी, उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. १०१

श्रीपत अंजो के तिलिस्म को दूर करता है। अनिमा से वह जान लेता है कि अंजो दौरा पडने से नहीं मरी, उसने ज़हर खा लिया था। जहर उसने क्यों खाया - श्रीपत इन्द्रनारायण को बताता है। अंजो घर को घडी की तरह चलाना चाहती थी, किन्तु वह न समझती कि इन्सान मशीन नहीं। इन्सान का मशीन बनना बहुत बडा खतरा है। अतः इन्द्रनारायण को चोरी से शराब पीना पडा, और अजो को मरने की ज़रूरत पडी। ''अंजो ने जब देखा कि वह ज़िन्दगी में अपनी सनम पूरी नहीं कर सकती तो उसके ज़हर खा लिया और जिस काम में वह ज़िन्दगी में सफल न हुई थी, उसमें मर कर हो गयी।''[१] श्रीपत जीजाजी और नीरज से कहता है कि उस कमरे पर बरसों से अंजो का जादू है, यह जादू टूटना जरूरी है, घर के लोग इन्सानों की तरह जिये।

अंजो का बेटा बडा होकर समझता है कि मम्मी की सनक के कारण, वह न क्रिकट का कप्तान बना, न आइ.सि.एस। अब उसकी पत्नी ओमी भी अपने बेटे पर उसी दबाब करती है। उसका भी परिणाम अच्छा नहीं होगा। नीलू भी अपने पिता और मामा श्रीपत के आदर्श का ही हो जाएगा। अश्क ने नाटक में समस्या का समाधान भी प्रस्तुत किया है। श्रीपत की अवधारण समस्या का उद्घाटन भी करती है और समाधान भी प्रस्तुत करती है। अंजो के घर में दो पीढियों में बच्चों पर अपने विचार लादने का अन्याय भी माँ द्वारा होता रहा है और श्रीपत नीरज और नीलु के मन में इसके प्रति विद्रोह जगाता है। और अपनी मनपसन्द ज़िन्दगी जीने केलिए उकसाता है।

---

१. अंजो दीदी, उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. ११०

इसके अलावा तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों पर भी अश्क की पैनी दृष्टि पडी है। अमलदारी में प्रोन्नति, राजनीतिज्ञ के करतूत आदि विषयों का उल्लेख भी नाटक में है।

कैद

इस नाटक में मध्यवर्गीय समाज के कुरूप शिंखंजों में जकडी हुई सब तरह से विवश निरुपाय और पराजिता नारी अपराजिता की कथा के सहारे विवाह और प्रेम की समस्या का विचार किया है।

अपराजिता याने अप्पी एक ऐसी नारी है, जो विवाह के पहले, उन्मुक्त हवा सी उडा करती थी। हँसते-हँसते लोट पोट हो जाती थी और उसके गालों के गुलाब हर घडी खिले रहते थे।[१] अप्पि अपनी मौसी का देवर दिलीप से प्रेम करती थी। अप्पी की माँ को भी यह पसन्द था। किन्तु अप्पी के मौसा की राय थी कि दिलीप जैसा निकम्मे के साथ शादी करके अप्पि की ज़िन्दगी बरबाद न करे। अतः उनकी शादी नहीं हुई।

अप्पि की बहन टिप्पो मर गयी। उसके बाद उसके पति प्राणनाथ की गृहस्थी संभालने केलिए अपराजिता उसकी दूसरी पत्नी बनती है। ''इस तरह वह अपनी आत्मा का मंज़िल और अपने सपनों की देवता दिलीप से सदा केलिए दूर हो जाती है और उस समाजिक व्यवस्था के आगे घुटने टेक देती है, जिसमें आर्थिक कारणों से पुरुष की अधिकार भावना के आगे नारी क़ो पराजिता होना पडता है।''[२] प्राणानाथ के साथ अखनूर में अप्पि आठ बरस से जी रही है।

---

१. कैद और उडान, उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. ४०

२. हिन्दी के समस्या नाटक, विनयकुमार - पृ. २७९

पारिवारिक बन्धनों और सामाजिक रूढ़ियों में आबद्ध अप्पी चट्टानों पर सिर पटकती हुई, पछेडें खाती, चनाब की जलधारा की तरह टूट टूट कर बिखर रही है। पेट-दर्द, कमर दर्द, सिर-दर्द कोई न कोई दर्द उसे हमेशा सताता है। उसके इस रोग का उपचार उसका पति कर नहीं सकता। अप्पी हमेशा उदासीन रहती है, बच्चों से भी प्यार नहीं करती। वह बच्चों को अपने चैन हराम करनेवाले समझती है।

अप्पी हमेशा ऐसा अनुभव करती है कि वह एक लंबी यात्रा तय करके आयी है और थक गयी है। उसने कभी एक फिलम देखी 'किंग-कॉग', उस फिल्म को वह भूल नहीं पाती। उसमें किंग-कॉग-गुरिला एक सुन्दर लडकी को उठाकर ले गया था। अप्पी की छत पर भी एक वैसा ही दिलेर किंग-कॉग बन्दर उतरता है जो कभी चादर उठ कर ले जाता है तो कभी निकाई का दोना। अप्पी को लगता है कि उसके अपने जीवन में भी ऐसा हो गया है। एक दिलेर किंग-कॉग उसे अपने घर उठा लाया है। ''अप्पी कहती है फिल्म के उस लडकी को बन्दर ने छोड दिया था, लेकिन अप्पी आज भी कैदी है। न टूटनेवाली बेडियाँ उसके पाँवों में बँधती चली गयी है।''[१]

प्राणनाथ अप्पी से बेहद प्यार करता है। अप्पी की हालत देखकर वह दुःखी रहता है। पिछले आठ वर्षों से वह सोचता रहता था कि दिप्पो की मृत्यु के बाद, वह अप्पी से शादी न करता तो उसे हमेशा हँसमुख देख सकता था। इसका दोषी वह खुद मानता है। अप्पी से विवाह करके उसे भी खुशी नहीं मिलती। इस प्रकार प्राणनाथ और अप्पी दोनों दुखी है।

---

१. कैद और उडान, उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. ६४

एक दिन अप्पी घर में दिलीप के आने की खबर मिल जाती है। इस पर अप्पी सहसा चमम उठती है। वह बिल्कुल बदल जाती है। घर के कबाडखाने की सफाई होती है, बच्चों को साफ-सुथरा किया जाता है, गुलदस्ते सजाये जाते, वर्षों के बाद वह रसेईघर जाती है, प्रकृति सौन्दर्य से भी आकृष्ट हो जाती है। वह गुनगुनाने भी लगती है। किन्तु दिलीप के साथियों की वजह वह अप्पी के घर में ठहरना छोड देता है तो अप्पी का यह सुख छीन लिया पाता है। कैद मैं पडी हुई अप्पी अपनी किस्मत पर रोती रहती है।

अश्क ने इस नाटक में अप्पी के रूप में उस नारी को प्रस्तुत किया है, जिसको साथ विवाह ने क्रूर व्यंग्य किया है। अप्पी अपने सपनों का संसार बनाती है और दिलीप को अपने हृदय के आसन पर बिठाती है। अप्पी और दिलीप दोनों के अपने स्वर्ग बनाने का प्रण भी लिया था। किन्तु उस अपने को साकार बनाना एक मध्यवर्गीय हिन्दु नारी के वश की बात नहीं। अप्पी इस विवशता को व्यक्त करती है - 'हम गरीबों का क्या है, माता-पिता ने जहाँ बैटा दिया, जा बैठीं।' अप्पी के माता-पिता उसके प्रति क्रूर नहीं थे। उसकी मौसी ने अप्पी के प्रेम को समझकर दिलीप के साथ विवाह का प्रस्ताव भी किया। किन्तु अप्पी की भलाई चाहनेवाला मौसाजी भी नहीं चाहा कि अपने भाई के साथ अप्पी की ज़िन्दगी बरबाद हो। दिलीप की कोई नौकरी भी नहीं।

आर्थिक कारणों से अप्पी का प्रेम असफल रहा। अतः उसे ज़िन्दगी के साथ समझौता करना पडता है। अपनी परिस्थिति से उसके मन में कोई विद्रोह नहीं होता। स्वच्छन्द विहरण करनेवाले बन्दरों को देखते वक्त कभी कभी अप्पी अपनी कैद की अनुभूति मरसूस करती है। ''कभी ऐसा लगता है कि शरीर की

समस्त शिराओं में कुछ सुलगने-सा लगा है।''[१] किन्तु अप्पी परिवारिक एवं सामाजिक बन्धनों से आबद्ध है। अप्पी ऐसा अनुभव करती है क वह निर्जीव हो गयी है। अप्पी की स्थिति में मनुष्य या तो दार्शनिक बन सकता है अथवा पत्थर। किन्तु अप्पी पत्थर और दार्शनिक में अन्थर नहीं मानती। वह कहती है - ''पत्थर कदाचित सबसे बडा दार्शनिक है।''[२] अप्पी को यह मालुम है कि उसके जीवन का अन्धकार उसनो, उसकी इच्छाओं अभिलाषाओं, आकांक्षाओं, स्वप्नों स्मृतियों - सबको निगल जायगा और वह उस शव की भाँति पडी रह जायेगी, जिसका सारा रक्त किसी तृप्त न होनेवाली जोंक ने चूस लिया हो।[३]

अप्पी अपनी ज़िन्दगी के साथ समझौता करने की चेष्टा तो अवश्य करती है, लेकिन वह सरल न हो सकी। वह प्राणनाथ की पत्नी बन चुकी है, पर वह कभी उसकी जीवन-संगिनी नहीं हो पाती। उसे वास्तविक प्रेम भी न कर पाती है। उससे जब दिलीप ने पूछा अप्पी तुम प्रसन्न नहीं हो तो उसमें जवाब दिया कि वह संतुष्ट है। दिलीप से वह कहती है दुनिया में कौन सन्तुष्ट है, यदि दिलीप प्रसन्न नहीं है तो अप्पी की प्रसन्नता का सवाल क्यों। इस घुटन में रहनेवाली अप्पी अपने पति की प्रिया नहीं हो पाती। अपने जीवन की विफलता से उत्पन्न सारा द्वेष प्राणनाथ के मासुम बच्चों पर बरसती है। अप्पी बच्चों को प्यार नहीं दे सकती। दिलीप के क्षणिक संयोग से यदि घर कबाडखाने से बदल कर सही घर हो जाता है तो दूसरी ओर बच्चों को माँ का प्यार भी मिलता है। दिलीप के आने की खबर मिल जाने के पहले अप्पी बच्चों को

---

१. कैद और उडान, उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. ७५-७६
२. वही पृ. ७६
३. वही पृ. ८०

'कमबख्त' कहा करती थी, किन्तु फिर वह उसे 'राजा बेटा' पुकारती है और प्यार से निम्मों को चूमकर कहती है - बडी अच्छी है मेरी मुन्नी बेटी।

अश्क ने संकेत दिया है कि यदि अप्पी का जीवन सन्तुलित होता,याने उसका दांपत्य जीवन सुखी होता तो वे बच्चे प्यार से वंचित न रहते। अप्पी जिस कुंठा ले कर जी रही है, उसमें पडी हुई नारी, परिवार के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह नहीं कर सकती। ऐसी स्थिति में विवाह की असफलता व्यक्त होती है। इस नाटक में अश्क के समस्या का कोई समाधान भी प्रस्तुत नहीं किया।

उडान

स्त्री पुरुष के असन्तुलित संबन्धों तथा विवाह के प्रश्नों का प्रस्तुतीकरण कर उसका समाधान अश्क ने इस नाटक में किया है। युद्ध काल में बर्मा से यागकर भारत में आयी माया नामक युवती की ज़िन्दगी के संपर्क में आनेवाले तीन पुरुषों - शंकर, रमेश और मदन - के माध्यम से नाटककार ने अपनी राय प्रकट की है कि नारी को पूजा की देवी या भोग विलास का साधन या पुरुष की संपत्ति न सम्झा जाय।

शंकर एक शिकारी है, जो स्त्री पर अपना अधिकार चाहता है। माया जानती है कि वह था की एवं विवश नारी का अनुचित लाभ उठाना चाहता है। अतः शंकर माया को आश्रय देता है। एक निराश्रय, शरणार्थी युवती को फँसानेवाला शंकर कायर और बर्बर है। शंकर की कामेच्छा से माया को बचानेवाला रमेश तो नारी को देवी बनाना चाहता है। माया का पुराना प्रेमि मदन उस पर सन्देह करता है। ये तीनों पुरुष औरत की कीमत नहीं जानते।

एक तो नारी को दासी समझता है, दूसरा उसकी पूजा करना चाहता है, और तीसरा उसको खिलौना मानता है। कोई भी जीवन संगनी की ज़रूरत नहीं समझता। माया इन सबसे नफरत करती है।

नाटककार मानते है कि नारी न श्रद्धा का पात्र है न वासना तृप्ति का साधन हैऔर न पुरुष का खिलौना। वह पुरुष की संगिनी है, सच्ची साथिन है। 'कैद' में अश्क ने जिस नारी को पराजित बताया है वह 'उडान' में मुक्त है।

भँवर

भँवर एक चरित्र प्रधान समस्या नाटक है। इसमें बदलते हुए मूल्यों और आधुनिक भारतीय मानस की टकराहट का चित्रण हुआ है। मूल्यों के साथ सन्तुलन स्थापित करना साधारण मानव केलिए कभी-कभी असंभव सा हो जाता है। आधुनिक युव मानस पाश्चात्य संस्कार के प्रभाव के कारण अपनी संस्कृति और मूल्यों को समझने की कोशिश नहीं करते। उच्छृंखलता के मोह में वे अपने को खो बैठते है। आधुनिक नारी की स्वच्छंदता, का पुरुष अनुचित लाभ उठाते है।

'भँवर' नाटक में अश्क ने आधुनिकाओं की उच्छृंखलत तथा कुँठित दांपत्य का चित्रण किया है। इस नाटक द्वारा अश्क ने एक नये तथ्य की स्थापना की है। प्रेम तथा विवाह के क्षेत्र में चरित्रगत कमज़ोरियों का महत्व है। 'भँवर' की नायिका प्रतिभा एक सुशिक्षित युवती है और अमीर परिवार की सन्तान भी है। धन, शिक्षा और सौन्दर्य से युक्त और प्रशंसकों से घिरी रहने पर भी वह जीवन से ऊबी हुई है। उसको अपने आसपास के सब कुछ घटिया लगता है। वह प्रफसर नीला से प्रेम निवेदन करती थी, लेकिन वह उसका

के कटु अनुभव के कारण विरक्त हो गया है।

तिरस्कार कर देता है। वह अपनी एक छात्रा के साथ हुए पहले दांपत्य जीवन के कटु अनुभव के कारण विरक्त हो गया है।

प्रतिभा फिर अपने सहपाठी सुरेश से विवाह कर लेती है। किन्तु दोनों में बौद्धिक समानताएं न होने के कारण उनका बन्धन टूट गया। सुरेश का इस पर कोई बुरा असर नहीं पडा, अतः उसने दूसरा विवाह कर लिया। किन्तु प्रतिभा असफल प्रेम की निराशा ग्रन्थि की शिकार हो गयी। ज़िन्दगी के प्रति प्रतिभा की ऊँची कल्पनाओं - जिसे वह कलचेर्ड कहती है - की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है। उसकी असफलता का कारण भी यह है। प्रतिभा अपनी इस कमज़ोरी को स्वीकार करके कहती है - ''मैं ने पहली बार ही शादी करके गलती की, असल में मेरी प्रकृति शादी के अनुकूल की नहीं। मेरे दिमाग के किसी कोने में आज़ाद कलचेर्ड ज़िन्दगी का कुछ ऐसा सुन्दर, सजीव और पवित्र चित्र अंकित है कि मैं अब फिर व्याह करके उसे भ्रष्ट नहीं करना चाहती.....।''[१]

प्रफसर नीलाभ की बुद्धिवादी विचारधारा का प्रभाव प्रतिभा पर पडा है। प्रतिभा अपने को बुद्धिवादी घोषित करती है किन्तु उसकी प्रकृति बुद्धिवाद से मेल नहीं खाती। अतः वह आत्मवंचना का शिकार बन जाती है। वह अभिजात कुल की लडकी है, उच्च शिक्षा प्राप्त है, सौन्दर्यवती भी है, इसलिए उसमें अहं का होना स्वाभाविक है। वह सामान्य जीवन अपनाने की कोशिश भी करती है, किन्तु वह असफल हो जाती है। इसी प्रयास के दौरान वह सुरेश से शादी करती है, हरदत्त के साथ फिल्म देखने जाती है, और ज्ञान नामक युवक में जीवन साथी ढूँढती है। व्यवहारकुशल न होने के कारण अपनी कमज़ोरी का

---

१. भँवर, उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. ६२

दोष दूसरों पर देखती है। प्रतिभा, 'उडान' की माया जैसी उन्मुक्त है, किन्तु वह बन्धनों से छुटकारा पा नहीं सकती। अभिजात संस्कार, उच्च शिक्षा और सौन्दर्य की बेडियों में वह जकडी हुई है।

हरदत्त प्रतिभा की इन कमज़ोरियों से अवगत है।वह कहता है ''असल में मैं ही पूरे तौर पर तुम्हारे 'साहचर्य' के योग्य हूँ। लेकिन प्रतिभा तुम घोर आत्मवंचना की शिकार हो''[१] प्रतिभा वैवाहिक जीवनयापन की कला से अनभिज्ञ है। वह साधारण जीवन से हमेशा दूर भागती है। बुद्धिवाद के प्रति मोह रखते हुए भी प्रतिभा रोमान्टिक है। हरदत्त कहता है, बुद्धिवादी हमेशा शान्ति से वंचित रहता है। अतः प्रतिभा हमेशा असमंजस में पडती रहती है। वह प्रतिभा से कहता है - 'नन्हीं-नन्हीं खुशियों में जीवन को ढूँढने पर शान्ति ज़रूर मिलेगी।'

प्रतिभा का तीसरा मित्र ज्ञान की राय में स्थायी प्रेम, अध्यात्मिक प्रेम से अधिक शारीरिक है। प्रतिभा कहती है ''स्थायी प्रेम अतृप्ति का दुसरा नाम है''[२] अपनी पतिव्रता पत्नी को भूलकर वेश्याओं पर प्रेम प्रकट करनेवालों का प्रेम सिर्फ शारीरिक आसक्ति है।

प्रतिभा इन तीनों पुरुषों से दूर भागती है, लेकिन अपनी कमज़ोरी से दूर नहीं हो पाती। अपने काल्पनिक विचारों से मुक्त नहीं हो सकी। अन्त में वह अपनी बचपना को स्वीकार करती है। निलाभ को पाने की असफल इच्छा पर वह दुःखी रहती है। वह कहती है चाँद को चाहनेवाला बच्चे की, खिलौने से तसल्ली न होती, उसका चाँद बहुत ऊँचा है।[३]

---

१. भंवर, उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. ८७

२. वही पृ. ७०-७१

३. वही पृ. १११-११२

छठा बेटा

यह अश्क का दूसरा सामाजिक समस्या नाटक है, इस नाटक की रचना की मूलभूत प्रेरणा नाटककार को जीवन की एक साधारण घटना से प्राप्त हुई थी। वे एक बार प्रीतनगर से अटारी तक की यात्रा कर रहे थे। उनके साथ ही एक मुसलमान बूढी महिला और उसकी खालाज़ाद बहन भी यात्रा कर रही थी। दोनों की बातचीत से ही इस नाटक का कथानक ढाँचा तैयार हुआ। बुढिया की शिकायत थी कि उसके बेटों ने उसे छोड दिए है। दोनों बेटों के साथ वह रहती है और बीच में झगडा करके दूसरे के पास चली जाती है। दोनों से उपेक्षित होने पर भी वह आशा नहीं छोडती और खुदा से मनाती है कि उसके तीसरे बेटे का घर आबाद हो जाय और उसके मन को सुख-शान्ति मिले। बूढ़ी की यह कभी पुरी न होनेवाली आकांक्षा नाटककार के मस्तिष्क में चक्कर काटती रही। इस विचार से 'छठा बेटा' तैयार हो गया।

अपने पाँच पुत्रों से उपेक्षित होनेवाले एक पिता की कहानी है 'छठा बेटा।' पुत्रों की माँ की कल्पना में छठा बेटा आता है और बाप का देखभाल करने का वादा देता है। आधुनिक ज़िन्दगी में परिवारिक रिश्तों के बदलता चित्र इस नाटक में देख सकता है। बाप, बेटा सब धन पर निर्भर रहते है।

पं. वसन्तलाल रेलवे का अवकाश प्राप्त पदाधिकारी है। उसके छः बेटे है। छठा बेटा दयालचन्द घर से भागा हुआ है। पहला बेटा हंसराज डाक्टर है, हरिनाथ कवि है, देव नारायण डाक घर में मुंशी है, कैलाशपति टिकट कलेक्टर है तथा गुरुनारायण पढ रहा है और अभी से इंडियन सिविल सर्विस में स्थान पाने का सपना देखा करता है। वसन्तलाल शराब खोर है, इतना पीता है कि

होश हवास खो बैठता है, नाली में पडा रहता है। समस्या यह है कि अपनी ज़िन्दगी के बचे हुए दिन वह कहाँ बिताए। वसन्तलाल के नाते का एक भाई है चानन राम। उसका विचार है कि वसन्त लाल बडे बेटे डाक्टर हंशराज के परिवार में रहे। हंसराज पिता के प्रति अपना दायित्व से भागता नहीं है। किन्तु पिता की गंन्दी आदतों से उसे घृणा है। उसके घर बडे बडे लोग आते जाते है। उसका पिता कीचट भरे जूते लिये, उसके मरीज़ों के लिए बने वेटिंग रूम में आ घंसता है। कभी टकनों तक ऊँची घोती-वह भी आधी मैली-सी, खुले गले की कमीज़ पहने नंगे सिर, ड्राइंग रूम में चला आता है और नंगे पाँव कौच पर बैठ जाता है। वह अपने पुराने संस्कारों को छोडकर सभ्य समाज के शिष्टाचार भी सीखना नहीं चाहता। हंशराज डरता है कि यदि पिता अपने साथ रहेगा तो उसकी प्रेक्टिस चौपट हो जाएगी।

दूसरे बेटे गुरुनारायण की शिकायत है कि बसन्तलाल बडी-बडी मूँछे है। रखता है, जिन पर नींबू टिक सके। वह सिर घुटा कर रखता है - चटिचल मैदान की भाँति। घर और बाहर का भेद भी उसे ज्ञात नहीं है। कमीज़ और तहमत पहने बाज़ार घूम आता है। देवनारायण कहता है कि उसका पिता उसके लंबे बालों को देखकर जलता है और हमेशा उसे गीत गाने केलिए तंग करता है। हरिनारायण तो सात्विक विचारों वाला निरामिष भोजी है और पिता तो रोज़ मांस खाता है। कैलाशपति की शिकायत है कि वह पिता के साथ एक पल भी रह नहीं सकता।

पिता के प्रति बेटों की इस असहिष्णुता का ज़िम्मेदार सिर्फ बेटे नहीं। पिता का भी दोष है। एक दिन गुरुनारायण को खाना खाकर विश्वविद्यालय जाना था और घर में आटा नहीं था। रुपये लेकर बसन्तलाल आटा लाने केलिए

बज़ार गया। शराब पीकर, आटा लाये बिना लौट आया। वह एक डरबी का टिकट लाया। पत्नी से कहता है 'हँस की माँ, माँग लो आज मुझसे जो कुछ मांगना चाहती हो, मैं तुम्हारी प्रत्येक इच्छा आज पूरी कर दूँगा।''[१] जब बेटों ने उसको छोड दिया तो चाननराम ने उसे अपने यहाँ रखा था। किन्तु धन उसको देना बसन्तलाल उचित न समझा। उसका कहना है - ''पूत कपूत होते हैं, पर पिता कुपिता नहीं होते। इससे वह इन कंबख्तों के नाम एक लाख लगा देगा।''[२] पत्नी ने जब बिछुडे हुए पुत्र दयालचन्द की याद की तो बसन्तलाल कहता है कि उसको ढूँठने केलिए वह दस हज़ार रुपये खर्च करेगा।

बसन्तलाल के बेटे निश्चय करते हैं कि रुपये बूढे से निकाल लिया जाय, नहीं तो बूढा पैसों को बरबाद कर देगा। घन के मोह में बसन्तलाल के बेटे पिता की सेवा में पहुंचते हैं। हंसराज भी आया है जो अपने पिता को अपने घर में रखना प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं समझता। सब पिता की गालियाँ सुनते हैं और शराब भी पिलाते हैं, फिर एक के बाद दूसरे को रुपये देने की घोषणा करता जाता है।

किन्तु थोडी ही देर में एक बार फिर बसन्तलाल वास्तविकता की कठोर भूमि पर उतर आता है। उसके बेटों के व्यवहार में फिर परिवर्तन हो जाता है। गुरु नारायण सोचता है कि वह तो आइ.सी.एस. होनेवाला है। उसका पिता शराबी है यह किसी को पता चल जायेगा तो उसका सारा भविष्य नष्ट हो जाएगा। देवनारायण अपनी माँ से खुलकर कहता है - ''नहीं माँ, उन्हें रखना मेरे बस का रोग नहीं है। मैं डरता हूँ। अपने यहाँ रखना तो दूर रहा, मैं उनके

---

१. छठा-बेटा, उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. ५२

२. वही पृ. ५४

पास तक नहीं जा सकता।''[१] बाकी तीनों ने भी इसी तरह पिता को साथ रहने से इनकार कर दिया।

इस प्रकार बसन्तलाल अपने पाँच पुत्रों से निराश होता है। इन पुत्रों की माँ की कल्पना में छठा बेटा दयालचन्द की छायामूर्ति उमडती है और वह उससे कहती है - 'देख, तेरे भाइयों ने हमें किस तरह दुलार दिया है। तेरे पिता दो दिनों से सब्जी मंडी में औंधे मुंह बेहोश पडे हैं। दयालचन्द मां से वादा करता है, ''मैं उन्हें वहाँ जाकर उठाऊँगा उनकी हर सेवा करूँगा।''[२]

बसन्तलाल शराबी तो है, किन्तु उसें बेमतलब न कहा जा सकता। उन्होंने अपने पाँच बेटों को इस लायक बना दिया है कि समाज में उनके लिए जगह हो। आज जब वसन्तलाल अवकाश - प्राप्त हो चुका है और उसके चार बेटे अपनी अपनी गृहस्थी बसाने की स्थिति में है। बेटे स्वार्थ में ऐसे लिप्त है कि अपने पिता को घर के छप्पर तले रखना नहीं चाहते। बसन्तलाल अभी कुछ दिन तो अपने एक नातेदार चाननराम के साथ रहा है। लेकिन चाननराम उसकी आदत को सुधारने में समर्थ नहीं है और वह चाहता है कि बसन्तलाल अपने ज्येष्ठ पुत्र हंसराज के साथ रहे।

हमारा आज का पारिवारिक जीवन स्वार्थ के दल-दल में पडा हुआ है। बसन्तलाल को जब लाटरी मिल गया, तो, बेटे उसकी सेवा केलिए उपस्थित हुए। आटे के पैसे से उसने लाटरी टिकट खरीदी, इसकी भी शिकायत किसी को नहीं। नाटककार ने बताया है कि रिश्ते-नाते का आधार भी पैसे है। जब

---

१. छठा-बेटा, उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. १११

२. वही पृ. ११७

तक पिता से धन लाभ की संभावना है तब तक पुत्र उसे प्रेम करते है। मध्यवर्ग की इस पारिवारिक समस्या अश्क ने 'छठा बेटा' नाटक में प्रस्तुत की है।

विनोद रस्तोगी

हिन्दी नाट्य साहित्य में वस्तु, चरित्र, रंगमंच, आदि सभी दृष्टियों से नये नये प्रयोग करनेवाले नाटककार है रस्तोगी। युद्धोत्तर कालीन भारत की स्थिति, बदलते मानवीय मूल्य आदि ने रस्तोगीजी को प्रभावित किया। उनका प्रमुख समस्या नाटक है 'नये हाथ'।

नये हाथ

इस नाटक की प्रमुख समस्या प्रेम और विवाह की है जो नयी बौद्धिक चेतना एवं बदलते हुए सामाजिक परिवेश के संघात से उत्पन्न है। पाश्चात्य वैज्ञानिक बुद्धिवाद ने संप्रति उच्च शिक्षा प्राप्त युवक-युवतियों को अत्यधिक प्रभावित किया है। वे प्रचलित वैवाहिक मर्यादाओं से विद्रोह करते हैं। उनके अनुसार सामाजिक आर्थिक प्रतिमानों के परिवर्तन के साथ वैवाहिक मूल्यों का भी परिवर्तन अपेक्षिग्त है। नाटककार ने नाटक में प्रगतिवादी विचारधारा के अनुरूप नये प्रयोग का सन्देश दिया है। अतः इस नाटक को प्रचारात्मक कहा जा सकता है।

ज़मीन्दारी प्रथा का उन्मुलन हो गया है, किन्तु ज़मीन्दार अजयप्रताप सिंह अपने आडंबर को बनाये रखने केलिए राजा नरेन्द्रसिंह से कर्ज पर कर्ज लेते जा रहे हैं। आर्थिक विषमता के कारण वह अपनी पढ़ी-लिखी पुत्री माला की शादी भी न करवा सका। माला अपने सहपाठी सतीश से प्रेम करती है, किन्तु माता पिता की आशा के विरुद्ध कुछ न करने का साहस उसमें नहीं है।

अजयप्रताप का छोटा भाई विजयप्रताप भी नये विचारों वाला युवक है, पर वह भी विद्रोह भीरू है। पिता का कर्ज वसूल करने के लिए नरेन्द्रसिंह का पुत्र महेन्द्र और पुत्रि शालिनी आते हैं। वे दोनों ओक्सफोर्ड में उच्च शिक्षा प्राप्त युवक-युवती है। उनका स्वभाव क्रान्तिकारी है, और दृष्टिकोण प्रगतिवादी।

माला की माँ माधुरी पुत्री को आज्ञा देती है कि वह महेन्द्र को प्रेम पाश में बाँधे ताकि कर्ज से मुक्ति मिले। माला माँ की आज्ञानुसार काम करती है किन्तु उसकी आत्मा साथ न रहने के कारण वह सफल न हो पायी। अजयप्रताप माला के अन्तर्मन को समझता है और पत्नी से शंका प्रकट करता है कि कहीं वह कालेज के किसी छोकरे से प्रेम करती है। किन्तु माधुरी तो वस्तुस्थिति की वास्तविकता को समझने की कोशिश न करती।

इस समस्या को अधिक चटकीला बनाने केलिए नूरजहाँ की प्रेम कथा प्रस्तुत है। अजयप्रताप का दोस्त नवाब यूसुफ के मामूजात्त भाई की बेटी नूरजहाँ हफीज़ नामक गरीब लडके से प्रेम करती है। पिता उसका विवाह ऊंचे खानदान में कराना चाहता है। यूसुफ कहता है ''नयी तालीम ने उसका दिमाग खराब कर दिया है। ....वह कहती है मुझे हफीज़ से मुहब्बत है। शादी करूँगी तो उसी से नहीं तो उम्रभर कुँवारी रहुँगी।[१] माला और सतीश की भी यही बात है, किन्तु माला बुज़दिल टेने के कारण अन्दर ही अन्दर घुटती है।

प्रेम और विवाह के क्रान्तिकारी विचार भी नाटक में प्रस्तुत है। शालीनी विजय से प्रेम करने लगती है। महेन्द्र माधुरी की नौकरानी बालो पर अनुरक्त है। वे दोनों आधुनिक युग के नर-नारी की आपसी संबन्ध के विषय में क्रान्तिकारी

---

१. नये हाथ, विनोद रस्तोगी - पृ. २१

दृष्टिकोण अपनाते हैं। शालिनी नारी स्वातंत्र्य और विवाह की समस्या पर मत व्यक्त करती हुई कहती है ''वह ज़माना गया जब औरत को रोटी केलिए पहले पिता, फिर पति और अन्त में पुत्र पर निर्भर रहना पडता था। आज वह आर्थिक रूप से स्वतंत्र है।''[१]

इसी बीच महेन्द्र फोन पर माल और सतीश की बातचीत सुनता है और वह माला के सपनों को सफल करने में समर्थ होता है। वह कभी भी माला के हृदय रहित प्रेम व्यापारों से प्रभावित न था। वह माला से कहता है कि अपने अन्तःकरण के प्रति ईमानदार रहे। वह जानता है कि माला माँ की आज्ञा पर उसको फँसाने की कोशिश करती है। किन्तु उसमें भावना की शक्ति न रहने के कारण असफल रह जाती है। वह कहता है ''मैं चाहता था कि आपके अन्दर सोया हुआ विद्रोह जागे और आप माता पिता की आज्ञ का विरोध करके साफ साफ कह सकें कि मैं कुंवर साहब से शादी नहीं कर सकती क्योंकि मैं किसी ओर से प्यार करती हूँ''[२] इससे माला जाग्रत होती है।

शालिनी ऑक्सफोर्ड में पढी-लिखी युवती है। विजय भारतीय शालीनता और शिष्टाचार के प्रति आदर रखते हुए भी प्रगतिवादी विचारोंवाला युवक है। भाई से भक्ति के कारण भाई के अपराध के लिए सज़ा भोगनेवाला व्यक्ति है वह। शालिनी उसे समझाती है कि शिष्टाचार के नाम पर छलना से बचे। किन्तु विजय तो भाई की इज्ज़त को प्रमुख मानता है और उसको अपराधी घोषित करना न चाहता। लेकिन माला महेन्द्र के उद्‌बोधन से अपने अन्तकरण की ईमानदारी को प्रधानता देने लगी और आदर्श की झूठी भावुकता में वह अब

---

१. नये हाथ, विनोद रस्तोगी - पृ. ४१

२. वही पृ. ५२

विश्वास न करती। अतः वह बताती है विजयप्रताप निर्दोषी है, अपराधी अजयप्रताप है। वह अपने सामन्ती आडंबर के लिए, असंगत कार्य कर बैठा है।

इसके बाद सबकी आँखें खुल जाते है। नवाब यूसुफ पुरानी पीढ़ी के व्यक्ति है, तथापि समय के बदलते हुए रूप को देखने में समर्थ है। वे अजयप्रताप को सलाह देते हैं कि वह दुराग्रह छोडकर नयी पीढ़ी को नया प्रयोग करने दे ''समझदारी से काम लीजिये, ज़िद ठीक नहीं। नयी इनसानियत के इन नये हाथों को तहजीब और समाज की पतवार लेने केलिए.... वक्त के साथ हमें भी बदलना चाहिए। हमारे तौर - तरीकों की दीवार खोखली हो गयी। बूढे हाथ गिरती दीवार को कब तक साघे रह सकते हैं? उसका गिर जाना बहकर है। उसकी जगह इन नये हाथों को नयी दीवार बनाने दीजिए।[१]

अजयप्रताप नये युग की पुकार सुनते हैं और जाति, वर्ग एवं कुल-प्रतिष्ठा का विचार किये बिना आत्मा की ईमानदारी के अनुरूप माला की शादी करवाता है। एक प्रगतिवादी सन्देश देकर नाटक समाप्त होता है।

बदलते परिवेश में प्रेम और विवाह की मूल समस्या का विश्लेषण नाटककार ने किया है। आज़ादी के बाद ज़मीन्दारी उन्मूलन हो गया और उस वर्ग की स्थिति करुण हो गयी। आय के साधन बन्द होने के कारण अपनी बाह्य प्रतिष्ठा और खोखली अहम की रक्षा के लिए उनको ऋण के बोझ में दबना पडते है। ''इसके साथ साथ नयी बौद्धिक चेतना और युग की बदलती मान्यताओं और मूल्यों ने उनकी वर्षों पुरानी मान्यताओं और सिद्धान्तों को

---

१. नये हाथ, विनोद रस्तोगी - पृ. १०६

चुनौती दी है।''[१] नाटक के अन्त में अजयप्रताप प्रगतिवादी सन्देश अपनाते है और अपना आडंबर तथा प्रतिष्ठा का खोखलापन समझता है। नये युग की बौद्धिक चेतना का सन्देश देने में नाटककार साफल निकला है।

रमेश मेहता

सामाजिक समस्याओं को केन्द्र में रखकर नाटक लिखनेवालों में रमेश मेहता का नाम उल्लेखनीय है। 'रोटी ओर बेटी' उनका प्रमुख समस्या नाटक है।

रोटी ओर बेटी

भारत भर हरिजनों के उत्थान की कोशिश हो रही है। रमेश मेहता के मत में जब तक उच्च वर्ग हरिजनों के साथ वैवाहिक संबन्ध या निकटस्थ रिश्ते स्थापित करने केलिए तैयार नहीं होता तब तक हरिजनों की समस्या का कोई समाधान नहीं होगा। आजकल संविधान हरिजनों को राजनीतिक और आर्थिक समता का वादा करता है, किन्तु सामाजिक समत्व से वे आज भी वंचित रहते है। उच्चवर्ग के लोग अपने दंभ और गर्व का त्याग नहीं कर सकते। अतः हरिजन भी अपनी हीनता भाव को छोड नहीं सकता।

प्रस्तुत नाटक ने इसी समस्या को लेकर प्राचीन वैवाहिक रूढ़ियों को चुनौती दी है। अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन करने केलिए बौद्धिक एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का सहारा लिया है। हिन्दू समाज की वैवाहिक मर्यादा में जाति-पाँति का महत्वपूर्ण स्थान है। नाटक में हरिजन युवक राजीव, ब्राह्मण युवती नलिनी को चाहता है। मन की हीनता ग्रन्थी के कारण वह अपनी प्रेमिका

---

१. विनोद रस्तोंगी की नाट्य साधना, विनोद पट्टेल - पृ. ४८

से अपनी जाति छिपाता है। जब नलिनी को पता चला कि राजीव हरिजन है वह पहले उसे धिकारती है। मगर फिर वह अपनी घमंण्ड और झूटी सामाजिक बन्धनों को तोडकर राजीव के पास जाती है।

समाज के हर क्षेत्र में मौजूद मुखौटे बाज़ी का पर्दाफाश नाटक में किया गया है। नलिनी तर्क और विवेक द्वारा अपनी बहानेबाज़ी को समझती है और जातिवाद के बन्धनों को तोडकर मानवीयता को महत्व देने को तैयार हो जाती है। उसका कहना है हर बडी जात वाले के अन्दर एक चोर है जो छोटी जात वाले से उसे मिलने नहीं देता। नलिनी भी उसी चोर के घमण्ड की शिकार थी। जातिवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त करनेवाला पात्र है पंडित प्रेमस्वरूप। वह नलिनी के पिता को समझाकर नलिनी और राजीव के विवाह की अनुमति दिलाता है। वह कहता है ''समय के अनुसार जो समाज बदलता नहीं वह ज़िन्दा भी नहीं रह सकता।''[१] नाटककार ने संकेत दिया है कि क्रान्तिकारी लोग धार्मिक भेद-भाव का विरोध करते हुए रोटी और बेटी याने उच्च-निम्न वर्ग के पारस्परिक संबन्ध पर बल देने पर ही जाति भेद की समस्या का समाधान हो पाता।

मलयालम समस्या नाटक उत्स और प्रसार

मलयालम समस्या नाटकों का अध्ययन करने से पहले मलयालम के नाटक साहित्य के इतिहास पर विचार करना अनिवार्य लगता है। मलयालम में भी अन्य भारतीय भाषाओं के समान नाटक की शुरुआत साहित्यिक गरिमा की

---

१. रोटी और बेटी, रमेश मेहता - पृ. ७८

ओर आकृष्ट होकर नाट्यानुकरण की पद्धति पर शुरू हुई। कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' के आधार पर रचित 'शाकुन्तलम गद्य' १८८० में निकला। उसका रचनाकार आयिल्यम तिरुनाल था और उसको सर्वप्रथम नाटक माना जा सकता है। इसके बाद नाट्य कृतियों के अनुवाद की एक परंपरा ज़ारी रही। १८८२ में केरल वर्मा वलियकोयितंपुरान ने 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' का अनुवाद किया। उन्होंने ही १९१२ में 'मणिप्रवालशाकुन्तलम' नाम का एक नया अनुवाद भी किया। चात्तुक्कुट्टि मन्नाडियार का जानकी परिणाय (१८८९), के नारायणमेनेन का मालक्किंग्निमित्रम (१८९०), चात्तुक्कुट्टि मन्नाडियार का 'उत्तररामचरितम्' (१८९२) कोटटारत्तिल शंकुण्णी का 'विक्रमोर्वशीयम', और 'मालती माधवम' आदि अनुदित नाटकों की परंपरा में आते है।

इसके साथ साथ शेक्सपियर की कृतियों के अनुवाद भी निकले। १८८८ में चंपकरामन वेलायुधन ने 'मेरचन्ड ऑफ वेनीस' नाटक का 'पोर्ष्या स्वयंवर' नाम से आट्टक्कथा रूप में अनुवाद किया। इसके बाद 'मच टू एबोट नतिंग' का अनुवाद निकला (१८९३) १८९४ में 'टाइमिग ऑफ द षू' का अनुवाद कंडत्तिल वरगीस माप्पिलै ने 'कलहिनी दमनकम' नाम से किया। इसी वर्ष गोविन्दन इलयिटम के 'सुनन्दा सरस वीरम' नाम से 'टेंपस्ट' का अनुवाद किया। कुञ्जिकुट्टन् तंपुरान् ने 'हॉमलेट' का और ए गोविन्द पिल्लै ने 'किंग लियर' का अनुवाद १८९७ में किया।

तमिल संगीत नाटकों के मंचीय प्रस्तुतीकरण ने मलयालम नाटककारों को प्रभावित किया। अतः लोक नाटकों की परंपरा से मलयालम नाट्य साहित्य अलग होने लगा। संगीत नाटकों का, नाटक के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। इस समय निम्नस्तरीय भाषा नाटकों की संख्या बढने लगी थी। नाटक रूपी

उत्कृष्ट काव्यरूप के नाम जो मनमानी हो रही थी उससे दुःखी होकर मुनषी रामक्कुरुप्प ने १८९४ में 'चक्की चंकरम' नाम का 'संगीतनाटक लिखा। इसके पहले प्रकाशित नाटक थे कुंजिक्कुट्टन तंपुरान का 'लक्षणासंगम', माधवियम्मा का 'सुभद्रा धनंजयम', पी.के. कोच्चीप्पन तरकन का 'मरियाम्मा नाटकम', कोच्चुण्णितंपुरान का 'कल्ल्याणि नाटकम', कंडत्तिल वरगीस माप्पिलै का 'एब्रायिक्कुट्टी' आदि। के.सी. केशवपिल्लै का 'सदारामा', टी.सी. अच्चुतमेनोन का 'संगीतनैषधम्', कुट्टमत्त कुंजिकृष्णकुरुप्प का 'देवयानी चरितम्' अदि विख्यात संगीत नाटक थे।

मलयालन की मुख्य नाट्य धारा का आधार १८८४ में सी.वी. रामनपिल्लै द्वारा रचित 'चन्द्रमुखी विलासम' नाम का प्रहसन है। इसकी पाण्डुलिपि तक आज उपलब्ध नहीं है। अतः इसका अध्ययन करना असंभव है। १८९३ में सी.वी. ने 'मत्तविलासम', नाम का दूसरा नाटक लिखा। इन दोनों नाटकों में तत्कालीन सामाजिक स्थितियों का चित्रण हुआ है। उपन्यासकार के रूप में ख्यातिप्राप्त सी.वी. ने स्वतंत्र इतिवृत्तों के ज़रिये नाटकीय प्रसंगों की सृष्टि की। सी.वि. के उपन्यासों का भी प्रमुख अंग नाटकीयता और संवाद कुशलता है। इसके बाद सी.वी. के कुछ प्रहसन निकले - 'कैमल की आखिरी चाल' (कयमलश्शन्टे कटश्शिक्कै), 'डाक्टर को मिला हुआ लाभ' (डाक्टरम्कु किट्टिय मिच्चम्) 'चेरुतेन कोलंबस', 'पुराना पाच्चन' (पंडत्ते पाच्चन) 'पापि जहाँ जारा पाताल' (पापि चेल्लन्निडम पातालम्) आदि। माना जाता है कि सी.वि. के उपन्यासों में जो गंभीरता और उदात्तता है, वह उनके नाटकों में नहीं मिलती।

सी.वी. परंपरा के परवर्ती नाटककार थे ई.वी कृष्णपिल्लै, एम.जी. केशवपिल्लै और एन.पी. चेल्लप्पननायर आदि। ई.वी. नाटकों का आधार

इतिहास था। कैनिक्करा पदमनाभ पिल्लै और कैनिक्करा कुमारपिल्लै ने इतिहास और वीरकथाओं के आधार पर नाटक लिखे। इन्हीं नाटकों के साथ साथ प्रहसान एवं कामदी का विकास हुआ। फिर भी अंग्रेजी कामदी की कल्पना हमारे प्रेक्षक नहीं कर सकते थे।

१९३० से मलयालम नाटक, पौराणिक कथाओं और समकालीन हास्य के सीमित दायरे में से ऊपर उठने लगा। १९३० में वी.टी भट्टतिरिप्पाड का 'रसोईघर से रंगमंच की ओर' (अटुक्कलयिल निन्नु अरङतेक्क) का प्रकाशन हुआ जिसे मलयालम का पहला सामाजिक सुधारवादी नाटक की ख्याति प्राप्त है। उसी वर्ष ही. एम. आर. बी का 'ताडपत्र में छिपा हुआ नरक' (मरक्कुडय्क्कुल्लिले महा नरकम) निकला। ये दोनों नाटक नंपूतिरी समाज के परिवर्तनों का कारण बने। उसी प्रकार भिन्न वर्ग के परिवर्तनों का चित्र के दामोदरन का (१९३९) में मिलता है। १९३६ में ए. बालकृष्णपिल्लै ने इब्सन के 'गोस्ट' नाटक का अनुवाद किया था। तब से मलयालम नाटकों के रूपशिल्प में नयापन आने लगा। १९३९ में एम.पी. भट्टतिरिप्पाट (प्रेमजी) का 'ऋतुमति' नाटक निकला। वी.टी, एम.आर.बी और प्रेमजी के नाटक यथार्थवादी नाट्यधारा की आरंभिक कडी माने जाते हैं।

समस्या नाटकों की आरंभिक कडी

वी.टी. भट्टतिरिप्पाड

केरल के सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र का प्रमुख एवं उज्वल व्यक्तित्व था वि.टी. भट्टतिरिप्पाड। नंपूतिरी समाज के सभी आचार मर्यादाओं का पालन करने के कारण सत्रह साल की अवस्था में भी वे अनपढ

थे। एक छोटी लडकी ने उन्हें मलयालम वर्णमाला की सीख दी। इसके बाद उन्होंने स्कूली शिक्षा प्राप्त की और वहाँ से देशी आन्दोलन तथा स्वतंत्रता संग्राम की रणभूमि में पदार्पण किया। नवजागरण के उस युग में भी केरल का नंपूतिरी समाज कई समस्याओं से जूझ रहा था।

नंपूतिरी समाज नयी शिक्षा एवं नये जीवनदर्शन से अवगत नहीं था। अन्धविश्वासों और रूढियों से उनका जीवन भरपूर रहा। नंपूतिरी औरतों की स्थिति दर्दनाक थी। पुरुष मेधा समाज के शासन तले, तडपनेवाली नारी की दशा पर वी.टी. चिन्तित थे। नारी की शोचनीय स्थिति का कारण तत्कालीन वैवाहिक रुढ़ियाँ थी। नंपूतिरी परिवार में सिर्फ ज्येष्ठ पुत्र को ही अपनी जाति से शादी करने का हक था। बाकी युवकों की सगाई नायर प्रभुवों के या क्षत्रियों के परिवारों में होती थी। इस कारण से समाज में वैवाहिक विडंबनाएँ बढने लगी। फलतः बूढे नंपूतिरी कोमल कन्या का पति बनता है। पुरुषों में बहु विवाह प्रथा प्रचलित थी। अतः औरतों की ज़िन्दगी नारकीय यन्त्रणाओं से होकर गुजरती थी। ज़िन्दगी की रोशनी से वंचित, पीडित नंपूतिरी औरत को सुघारना वी.टी. का लक्ष्य था। इसी उद्देश्य से उन्होंने 'रसोईघर से रंगमंच की ओर' नाटक का सृजन किया।

वी.टी. ने अपने नाटक के ज़रिए यही सन्देश जनता के दिल में पहुँचाना चाहा कि अन्याय के आगे टूटना या झुकना नहीं बल्कि सच्चाई पर खडे रहना है। सामाजिक ज़ंजीरों और झूठी मर्यादाओं को उन्होंने निर्मम तोड दिया। ताडपत्र की छतरी के पीछे दम घुटनेवाली नंपूतिरी औरतों को बाहर लाकर उन्हें रोशनी की लकीर दिखायी। अकर्मण्य नंपूतिरी बालकों को उन्होंने नये जीवन दर्शन की सीख दी। वी.टी.के भाषण और रचनाओं में क्रान्ति की

R
894-2.091 :: 99 :: G 8588
AmA

चिनगरियाँ थी जिसने समाज की जीर्णकीर्ण परंपराओं और मान्यताओं को राख कर दिया।

रसोईघर से रंगमंच की ओर

नाटक में, शोषित प्रताडित नारी के दुःख दर्द को प्रभावशाली ढंग से वी.टी. ने रेखांकित किया। रूढियों पर विजय प्राप्त करनेवाले नवयुवकों के आदर्शों का उद्‌घाटन भी इसमें हुआ है। अतः यह नाटक रूढिवादी समाज पर फेंका गया एक बम था, जिससे नंपूतिरू की रसोई की सारी रूढियाँ राख हो गयी।

उस ज़माने में नंपूतिरी समाज में औरतों पर बहुत सारी बंदिशें थीं। यहाँ तक कि सोने के गहने पहनने का अधिकार भी उसे नहीं था। माधवन ऐसी बंदिशों को तोडना चाहता है, क्योंकि उसे मालूम है कि नारी के ऊपर ऐसे अंकुश रखे जाने के कारण उसका व्यक्तित्व कुंठित होता है। उसकी प्रेमिका तेती चांदी की अंगूठी पहनती थी, उसे ज़नरदस्ती सोने की अंगूठी वह पहनाता है। माधवन के क्रान्तिकारी मन की प्रतिक्रिया यों फूट निकलती है - 'यदि मैं एक मूस हूँ तो मेरी पत्नी को सोने के गहने पहनाउँगा, उसके साथ बैठूँगा, उसको बिन्दी लगाऊँगा।[१]

वी.टी. इस तथ्य से भी अवगत थे कि नंपूतिरी समाज के पिछडेपन का मूल कारण शिक्षा का अभाव था। जीविका चलाने केलिए पूजारी के पेशे पर निर्भर रहनेवाले नंपूतिरी युवकों को काफी आर्थिक तंगी एवं अभावग्रस्तता से जूझना पडता था। अतः वी.टी. ने अपने नाटक में उच्च शिक्षा की महत्ता पर भी

---

१. रसोयी घर से रंगमंच की ओर, वी.टी. भट्टतिरिप्पाड - पृ. १२

ज़ोर दिया है। माधवन नहीं चाहता है कि अपनी ज़िन्दगी पुजादि कार्यों के घेरे में बन्द हो जाय। इसलिए वह उच्च शिक्षा प्राप्त करता है।

नंपूतिरी समाज में प्रचलित बहुविवाह प्रथा की ओर पाठकों का ध्यान खींचते हुए वी.टी. ने इस प्रथा की भर्त्सना की है। नंपूतिरी परिवार में सिर्फ ज्येष्ठ पुत्र को ही जातीय विवाह का अधिकार था। अतः कई किशोर लडकियों की शादी बूढे नंपूतिरियों के साथ होती थी। उनकी तो वह तीसरी या चैथा शादी होगी। नाटक में तेती और माधवन आपस में चाहते हैं। तेती का भाई कुंजु भी उनकी शादी करवाना पसन्द करता है। माधवन की कुण्डली भी अच्छी होने के कारण उसकी शादी रुढ़ियों और मान्यताओं के विरुद्ध समझी जाएगी। अतः तेती का पिता विलयूर अच्चन नंपूतिरी उसकी शादी कर्कटांकुन्नत्त नंपूतिरी नामक एक बूढे से करवाने का निर्णय लेता है।

तेती यह भी नहीं जानती कि उसका दुलहा कौन है। वह चाहती है कि माधवन आये। अपना विचार किसी से कहने का साहस उसमें नहीं है। अपनी कोमल भावनाओं और आशा आकांक्षाओं को राख कर देनेवाली रूढियों से विद्रोह करना उसके वश की बात नहीं। एक नंपूतिरी औरत की दर्दनाक हालत तेती के ज़रिए व्यक्त होती है। कुंजु ने अपनी बहन की ज़िन्दगी बरबाद होने नहीं दिया। वह प्रगतिशील युवक है। वह अदालत से आदेश निकलवाकर शादी रोकता है। माधवन वक्त पर पहुंचकर तेती को अपनाता है। यों नाटक का शुभान्त हो जाता है।

गरीबी में ज़िन्दगी गुज़ारते वक्त भी नंपूतिरी समाज के सदस्य उधार लेकर श्राद्ध आदि रीति रिवाज़ और आचारों केलिए फिसूल खर्च करते थे। इसका उल्लेख भी नाटक में हुआ है।

इस नाटक ने नंपूतिरी समाज में क्रान्ति का नारा लगाया। इसके माध्यम से जड आचार निष्ठाओं को तोडकर, नारी के सपनों की पूर्ति करने की सफल कोशिश वी.टी.ने की।

एम.आर.बी.

वी.टी. के प्रभाव एवं प्रेरणा से ओतप्रोत होकर समाज सुधार के क्षेत्र में कर्मरत होनेवाले व्यक्तित्व था एम.आर.बी। एम.आर.बी. ने अपने आदर्शों का पालन ज़िन्दगी में करके दिखाया। नंपूतिरी समाज का पहला विधवाविवाह करके इतिहास के पन्नों में एम.आर.बी.ने चिरन्तन प्रतिष्ठा प्राप्त की है। उन्होंने एक नयी नाट्य धारा की स्थापना केलिए रचना नहीं की, बल्कि नंपूतिरी समाज की झुठी मर्यादाओं और उसके कारण दम घुटनेवाली औरतों की पीडा का पर्दाफाश करना उनका लक्ष्य रहा। नंपूतिरी औरत की गुलामी, और दर्द के प्रति उनके मन में जो दुःख और विद्रोह था उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप उन्होंने एक कहानी लिखी। फिर योगक्षेम सभा की बैठक में नाटक के रूप में उसकी प्रस्तुति हुई।

बहुविवाह प्रथा के कारण नंपूतिरी लडकियों को बहुत सारी मुसीबतें झेलनी पडी थी। घर की अभाव ग्रस्तता के कारण बुढे नंपूतिरी एक के बाद दूसरी शादी करते रहने में नहीं हिचकते। लडकियों के माँ-बाप अपने कन्धे से बोझ उतारने केलिए बेटी की शादी किसी न किसी प्रकार करवा देते हैं। जन्म से बन्धनों में पलनेवाली बेचारी लडकी को अपने भाग्य पर रोने के सिवा कुछ न करने का साहस नहीं था। नाटक में इट्टिपाप्ति को मालूम है कि जिससे उसकी शादी होनेवाली है, वह पुरुष पहले दो विवाह कर चुके हैं। वह निष्ठुर

है और ससुराल में सौतनों के बीच हक केलिए होड भी है। यह सब जानते हुए वह घबराती है, किन्तु उसकी रक्षा करनेवाला कोई नहीं था। उसका चाचा रामन नंपूतिरी ने प्रगतिवादी विचार रखने के कारण उसके विरुद्ध आवाज़ उठायी। मगर समाज की बर्बर परंपराओं को जीत नहीं सका।

निष्ठुर पति और सौतन की मार-पीट एवं अत्याचारों से पीडित होकर इट्टिपाप्ति की ज़िन्दगी गुजरती है। दुःख दर्द झेलते झेलते वह एक दिन अपनी ज़िन्दगी खतम करने का निश्चय लेती है। अपने माता-पिता को एक बार देखने की इच्छा की पूर्ति भी न होकर अभागिन इट्टिपाप्ति अपने उत्तरीय से फंदा बनाकर खुदकुशी करती है।

निर्दय एवं बर्बर ब्राह्मण्य का शिकार होकर, उससे विद्रोह करने की शक्ति नारी में नहीं होती। इट्टिपाप्ति हारना नहीं चाहती, इसलिए वह परंपरावदियों और निष्ठुर नंपूतिरियों के शासन की दुर्गती से अपने को बचाती है। उसकी आत्महत्या उसके स्वाभिमानी व्यक्तित्व को प्रकट करती है।

एम.पी. भट्टतिरिप्पाड (प्रेंजी)

नंपूतिरी समाज की रूढ़ियों और अत्याचारों के विरुद्ध वी.टी. एवं एम आर.बी. ने जो महान प्रयत्न किया था उससे प्रेरणा पाकर प्रेमजी ने भी समाज सुधार को अपना कार्यक्षेत्र माना। योगक्षेम सभा के कार्यकलापों नाटक की प्रस्तुति आदि में उन्होंने वी.टी. का साथ दिया। नाटक, भाषण, लेख तथा कविता द्वारा उन्होंने समाज सेवा की। आदर्श भाषण एवं कर्म को सदैव कायम रखने में वे सक्षम निकले। अपने भय्या एम.आर.बी. की तरह उन्होंने भी एक विधवा युवती को ज़िन्दगी दी। नाटकीय पीडाओं से गुज़रनेवाली नंपूतिरी औरत की दर्दनाक ज़िन्दगी को सुधारने केलिए उन्होंने नाटक भी लिखा।

ऋतुमति

नंपूतिरी समाज में ऐसी एक प्रथा प्रचलित थी कि ऋतुमति होने के बाद एक बलिका को घर से बाहर निकलने की अनुमति नहीं दी जाती। इसी समस्या को केन्द्र में रखकर प्रेमजी ने नाटक लिखा। वी.टी और एम.आर.बी. के नाटकों में नायिका का विद्रोही व्यक्तित्व देखा नहीं जा सकता। प्रेंजी ने विद्रोही औरत की प्रस्तुति की। नंपूतिरी औरत की ज़िन्दगी घर के अन्धेरे में टटोलती रही है। बचपन से, रूढ़ियों और मर्यादाओं की जंजीरों से घायल होकर बस्सों की दर्दनाक ज़िन्दगी में स्त्रीत्व, मातृत्व और सामाजिक जीवन के सभी अधिकारों से वे वंचित रहती थी।

नाटक की नायिका देवकी स्कूल में पढती है। ऋतुमती होने के बाद, उसकी इच्छा के विरुद्ध उसकी पढाई स्वतम की है और उसके चाच्चा किषक्केप्रम नंपूतिरी उसे अपने घर ले जाता है। ऋतुमती युवती को चोली पहनने की हक नहीं था। चाचा देवकी से चोली उतारने केलिए हृठ करता है। किन्तु देवकी नहीं मानती। वह किषक्केप्रम और पत्नी की मार-पीट सहकर भी, परंपरा से विद्रोह करती है। उसके इस विद्रोह का साथ देते हूए उसका सहपाठी वासुदेवन उसकी प्रशंसा भी करता है। मैले कपडों में, भुखे रहकर भी देवकी किषक्केप्रम से संघर्ष करती है।

रूढ़ियों के सामने देवकी विद्रोह की सुलगती आग बन जाती है। उसकी भाषा और बर्ताव में विद्रोह की जो झलक थी उसको किषक्केप्रम ने पागलपन माना और उसकी इलाज केलिए जादूगर लाया गया। किन्तु देवकी के अटूट मन को जीत न सका। किषक्केप्रम ने विवश होकर देवकी की शादी कराने का

निर्णय लिया। देवकी इसका भी विरोध करती है। शादी के मण्डप में सबके सामने वह देवकी को मारता है। देवकी का मित्र वासुदेवन जो विवाह केलिए आया था, आगे बढ़कर देवकी को बचाता है।

देवकी का विद्रोह भारतीय नारीत्व का उज्ज्वल पहलु है। इससे पहले मलयालम नाट्यक्षेत्र में इतना निडर व्यक्तित्व रखनेवाली नारी पात्र की सृष्टि नहीं हुई थी। उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में यूरोप में वैज्ञानिक विकास के फलस्वरूप जो मनोविश्लेषणात्मक विचारधारा प्रचलित थी उसका प्रभाव केरल में भी हुआ। सामाजिक यथार्थ के साथ-साथ मानव मन और विचारों को भी महत्व मिलने लगा था। देवकी और वासुदेवन जैसे पात्र इसके उदाहरण है। यों प्रेंजी के पात्रों का अस्तित्व प्रादेशिकता की सीमाओं का उल्लंखन करता है।

एन. कृष्णपिल्लै

मलयालम के प्रथम समस्यानाटककार का श्रेय एन. कृष्णपिल्लै को है। किसी गंभीर एवं मौलक जीवन समस्या को लेकर नाटक लिखना उनका लक्ष्य रहा। उन्होंने इब्सन को अपना प्रेरणा स्रोत माना है। उनके प्रमुख समस्या नाटक है 'उजडा घर', 'कन्यका', 'समझोता', 'पूँजी', 'बलपरीक्षा', 'बन्दर गाह की और', 'घडे का दिया', और 'मरीचिका'।

उजडा घर (भग्नभवनम)

प्रेम और अनमेल विवाह की समस्या से जूझते जूझते पूर्ण रूप से उजडनेवाले एक परिवार की करुण कहानी नाटक में प्रस्तुत की गयी है। अपनी आर्थिक तंगी के कारण माता-पिता अपनी बेटियों की शादी उनकी मर्जी के खिलाफ करा देने केलिए मज़बूर हो जाते है। शादी के तुरंत बाद लडकियाँ

उस नापसन्द रिश्ते से समझौता करने में असफल निकलती हैऔर परिवारिक जीवन में दरारें पडना शुरु होते हैं। माधवन नायर की बेटियाँ राधा और सुमती की ज़िन्दगी की त्रासदी यही है। बडी लडकी राधा शादी के बाद भी अपने पुराने प्रेमी हरीन्द्र को न भूल सकती। दिल खोलकर अपने शराबी एवं बीमार पति जनार्दननायर को वह प्यार न कर सकती है। पति की वहमपूर्ण दृष्टि के कारण राधा अपना चैन खो बैठती है। उसकी ज़िन्दगी नारकीय यन्त्रणाओं से गुज़रने लगती है जबकी प्रेमी हरीन्द्र विलायत से लौ आता है और दोनों का पुनः मिलन होता है।

हरीन्द्र राधा को स्वीकार करने केलिए तैयार है। प्रेम और कर्तव्य के बीच फँसकर राधा की मानसिकता बिलकुल बिगड जाती है। अपने प्रेमी का निमंत्रण रचीकार करने की प्रबल इच्छा होते हुए भी सामाजिक मान मर्यादा और खानदान की इज्ज़त को वह नहीं तोडना चाहती। एक अन्तिम फैसला लेने में वह असफल होती है। राधा की छोटी बहन सुमती का वैवाहिक जीवन भी उजड रहा था। सुमति का गंवार पति केशवकुरुप्प पत्नी को गुलाम माननेवाला है। सुमती को अपने ससुराल में पशुओं से भी गयी बीती ज़िन्दगी बितानी पडी और उससे तंग आकर उसने ससुराल छोड दिया। केशवकुरुप्प इतना बर्बर है कि सुमति के घर आकर माधवननायर का घोर अपमान करता है पिता और बेटी के बीच अवैद्य संबन्ध का आरोप करने से भी वह न हिचकता है। जिन्दगी के दुःख दर्द से बचने केलिए सुमती खुदकुशी का रास्ता अपनाती है।

इस खुदकुशी के सद्मे से राधा पागल बनती है। राधा की छोटी बहन लीला का प्रेमी उसके साथ विश्वासधात करता है। वह पिता का आज्ञापालक पुत्र बनना चाहता है और पिता की इच्छा के विरुद्ध लीला से शादी करना नहीं चाहता।

सुमती की आत्महत्या, राधा का पागलपन और लीला का मोहभंग इन सबके मूल में एक हद तक नियति की हाथ है, लेकिन नियति से भी बढकर कमज़ोर सामाजिक व्यवस्था, अहंवादी पुरुष की स्वार्थता आदि इस परिवार को पूर्ण रूप से तहस नहसकर देती है।

कन्यका

पारिवारिक रिश्ता सामाजिकता का अनिवार्य अंग है। लेकिन कुछ परिवारों में यह रिश्ता एक सौदा मात्र रह जाता है। कुछ माता-पिता अपनी सन्तानों से विशेषकर बेटियों से यही अपेक्षा रखते हैं कि वे उनकी हर आज्ञा का पालन बिना प्रश्नचिह्न लगाए करती रहे, सब कुछ चुप चाप सहती रहे। कामकाजी नारी के घरवाले उसकी शादी करवाने केलिए तैयार नहीं होते क्योंकि उसकी शादी हो जाती तो घर चलाने केलिए दूसरा रास्ता न होगा। खूनी रिश्तों से भी बढ़कर पैसे को तरजीह देनेवाले मातापिता की महत्वाकांक्षा की शिकार बननेवाली देवकिक्कुट्टी नामक एक कामकाजी औरत के त्रासद जीवन को पूरी सच्चाई और तीखेपन के साथ एन. कृष्णपिल्लै ने कन्यका में रेखांकित किया।

पैंतीस बरस की उम्र में अविवाहित रहनेवाली देवकिक्कुट्टि घरवालों केलिए एक दुधारु गाय है। माता-पिता की चाल से वह बिलकुल अभिज्ञ है। यह जानकर वह मन ही मन कुढती है कि भाई राजशेखरन उसकी कमाई से खाता है और मौज उडाता है। माँ बाप के लाड घार से वह गुमराही बनता है। देवकिक्कुट्टि की छोटी बहन भारती की शादी हो चुकी है। पैंतीस बरस तक कुँवारी बनने केलिए अभिशप्त देवकिक्कुट्टि जैसी नारियों का यौन-मनोविज्ञान

माता-पिता समझ नहीं पाते। देवकिक्कुट्टी अपनी सारी आशाओं और अरमानों को मन में ही दबा रही थी। लेकिन उसके मन का विद्रोह धीरे धीरे उमड पडता है। अपनी बहन के वैवाहिक रिश्ते से वह जलने लगती है। जब भारती का पति उसे छोडकर चला जाता है तो देवकिक्कुट्टि मन ही मन खुशी महसूस करती है। उसके मन का अन्तर्द्वन्द इस रबद तक बढ़ता है कि वह भारती का पति चेल्लप्पन पिल्लै की हत्या करते हुए अपनी बहन् को विधवा बनाने की असफल साजिश रचती है। अपने मन की पीडा और द्वन्द को माँ के सामने वह खोल देती है। ''शिक्षा, नौकरी और प्रतिष्ठा सब मानव की बाहरी त्वचा है। उसके भीतर सशक्त पौरुष एवं स्त्रीत्व बने रहते है। वे कभी कभी आवाज़ उठाते हैं। जवाब न मिलने पर त्वचा तोडकर बाहर ज़रूर निकलेंगे।'[१]

वकिक्कुट्टि के मन में दबी पडी अतृप्त कामवासना ही प्रतिशोध का रूप धारण करती है। नाटक की भूमिका में एन. कृष्णपिल्लै ने बताया है ''जब अपनी इच्छआएं जलकर शख से जाती है, तो उन इच्छाओं की पूर्ति करनेवालों को देखकर लंबी सांस लेना मानव की आदत है, लंबी सास कभी द्वेष बनती है, द्वेष जलन बनता है और जलन संहारकांक्षा में परिणत होना सहज है।''[२] असली प्रेम के मूल्य को पहचानकर वह अपना सारा प्रतिशोध भूलती है। वह अपनी नौकरी छोड देती है और दफ्तर के चपरासी के साथ दांपत्य जीवन शुरू करने केलिए घर से भागती है।

नाटककार यह व्यक्त करना चाहते है कि नारित्व की पूर्णता पत्नी और माता बनने में है।

---

१. एन. कृष्णपिल्लै के नाटक (कन्यका) - पृ. १२०

२. वही पृ. ६९

समझौता (अनुरंजनम)

जीवन के दो भिन्न पहलु हैं अस्तित्व और प्रगति। प्रगति केलिए संघर्ष और अस्तित्व केलिए समझौता अनिवार्य है। समझौता स्वतंत्र और सजीव सामाजिक जीवन को सफलता देनेवाली सामाजिक संस्कृति का आधार है। इसी संस्कृति के निर्माण केलिए संघर्ष भी होता है। अतः संघर्ष और समझौता एक दूसरे के पुरक बनते है। समझौते की इस प्रवृत्ति प्रभावोत्पादक बनाने केलिए बुद्धिवादियों की ज़रूरत है। वे समाज के उन्नायक है, व्यक्ति के विचार, भावना, विश्वास और आदतों में बदलाव लानेवाले वे ही होते है। इसको लक्ष्य मानकर यह नाटक लिखा गया है।

इस नाटक का केन्द्र एक परिवार है, किन्तु इसमें समाज के सारे संबन्धों का विश्लेषण होता है। किट्टुपिल्लै एक मेहनतकश किसान है जिसने अपने इकलौते भाई केलिए अपना जीवन अर्पित कर दिया है। उसका धन और परिवार अपना भाई केशवनकुट्टी है। केशवनकुट्टी के सुख एवं प्रगति को वह जीवन की सफलता मानता है। उसने केशवनकुट्टी की शादी एक अमीर घराने में करवायी। किन्तु केशवनकुट्टी का जीवन के प्रति अलग दृष्टिकोण था। वह अपनी पत्नी गोमती से सन्तुष्ट न हो सका, केशवनकुट्टी समाज सेवा को अपना कर्तव्य मानता है और वह उसके अनुकूल प्रगतिशील पत्नी चाहता है। गोमती तो उसके ठीक विपरीत है। वह पति से भौतिक सुख भोग और आनन्दमय जीवन की अपेक्षा रखती है। किट्टुपिल्लै हठ करता है कि भाई गोमती की इच्छाओं की पूर्ति करे और सन्दुष्ट जीवन बिताये। केशवनकुट्टी अपने भाई और पत्नी से समझौता कर नहीं पाता। अपने भाई के असफल दांपत्य जीवन से हताश होकर किट्टुपिल्लै आत्महत्या करता है।

ज़िन्दगी के प्रति आदमी के दृष्टिकोण में भिन्नता है। नज़रिये की यह टकराहट किट्टुपिल्लै के परिवार को उजाड देती है। किट्टुपिल्लै सिर्फ धन कमाने और सामाजिक प्रतिष्ठा को जीवन का मूल मानता है। केशवनकुट्टी देश सेवा को जीवन का कर्तव्य समझता है। गोमती केलिए अपनी वासनाओं की तृप्ति एवं आनन्दमय दांपत्य जीवन प्रमुख है, अतः वह पति से असन्तुष्ट रहती है। किट्टुपिल्लै भाई को बदलने की बेहद कोशिश करता है।

केशवनकुट्टी और किट्टुपिल्लै अपने व्यक्तित्वों को एक दूसरे के अनुसार परिवर्तित न कर सके। दोनों अपने सिद्धन्तों में अटल रहते हैं। तनिक भी रियायत करने केलिए वे तैयार नहीं थे। किन्तु केशवनकुट्टी के सिद्धान्त की एक विशेषता है। उसमें सिर्फ स्वार्थपरता नहीं, कुछ अनिवार्य प्रेरणाएं है। फिर भी उसमें कमज़ोरियाँ और दोष ज़रूर है। आदर्श के प्रति अन्धा दृष्टिकोण रखते हुए भी वह व्यवहारिक जीवन से अवगत नहीं है। किट्टुपिल्लै अपने परिवार की उन्नति को सबसे महत्वपूर्ण मानते है। दोनों अपनी अपनी हठ पर टिके रहते है। यह हठ परिवारिक बर्बादी का कारण बनी। अन्त में गोमती अपनी भूल पहचानती है। वह पति के अनुरूप पत्नी बनने को तैयार हो जाती है। केशवनकुट्टी भी पत्नी को प्रेम करने का निश्चय लेता है। समाज सेवा का व्रत तोडे बिना भी वह सक्षम पति बन सकता है। यही सन्देश नाटककार देता है कि परिवार समाज की नींव है, अतः परिवार का पतन समाज का पतन है।

पूँजी (मुडक्कुमुतल)

पारिवारिक परिवेश में नारी जीवन की विभिन्न समस्याओं का चित्रण इस नाटक में हुआ है। नारी को आर्थिक एवं सामाजिक सुरक्षा केलिए पुरुष की

सहायता अनिवार्य है। पुरुष तो उसको अपनी इच्छा पूर्ति करनेवाले साधन समझता है। अतः नारी की ज़िन्दगी अस्वतंत्र एवं दर्दनाक होती है।

अनमेल विवाह के शिकार व्यक्ति है प्रभाकरन नायर और भिन्ना, उनके दो बच्चे भी है। पति पत्नी दोनों एक दूसरे को समझने में असमर्थ हैं। तंकम्मा अपने पुराने घराने के गौरव पर गर्व करनेवाली है। प्रभाकरन नायर उसे अपने योग्य नहीं समझता। उसकी राय में वह भावुक नहीं है। तंकम्मा अपने घराने की एक गरीब लडकी श्यामला की देखभाल करने का दायित्व लेती है। प्रभाकरननायर श्यामला के प्रति इतना आकृष्ट हो जाता है, कि वह उसको पढ़ाने केलिए बडे कर्ज का बोझ लेता है। वह पत्नी और बच्चों को छोडकर श्यामला को अपनाना चाहता है।

आर्थिक लाभ के मोह से श्यामला की माँ अपनी बेटी को प्रेरणा देती है कि वह प्रभाकरन नायर को स्वीकार करे। किन्तु श्यामला तंकम्मा के प्रति एहसानमन्द है। तंकम्मा की ममता को वह कभी भूल नहीं सकती। वह तंकम्मा के पास जाकर उससे माफी माँगती है। तंकम्मा बहुत ही त्यागशील तथा स्नेहमयी पत्नी है। पहले वह श्यामला को अपने दुःख का कारण समझती थी। जब श्यामला उससे सारा सत्य बताती है तो वह श्यामला के प्रति उदार हो जाती है। वह पति का सुख चाहती है और श्यामला से अनुरोध करती है कि अपने पति की इच्छा की पूर्ति करे। तंकम्मा की त्यागशीलता और उदारता से वह अभिभूत हो जाती है। पति-पत्नी के परस्पर विरोधी व्यक्तित्वों की टकराहट नाटक में गूँजती है।

बलपरीक्षा (बलाबलम्)

सास बहु का आपसी झगडा भारतीय परिवार की टूटन का एक प्रमुख कारण है। इस झगडे के मूल में व्यक्ति मन की सुप्त अधिकार लिप्सा ही काम कर रही है। सासों से पिसी जानेवाली बहुओं की संख्या कम नहीं। सास अपने बेटे और बहु से यही अपेक्षा रखती है कि वे उसके इशारे पर ही चलते रहे। एक ज़माना ऐसा था कि बहुएँ ससुराल के सारे अन्याय चुपचाप सहती है, अन्यायों के सामने चुप्पी सघती है। लेकिन ज़माना बदल गया। पढी लिखी नारी अपने स्वतंत्र अस्तित्व के प्रति सचेत हो गयी। अतः वह अपनी प्रतिक्रिया भी दिखाने लगी। इस समस्या को इस नाटक में मुखरित किया गया है।

विधवा माँ लक्ष्मियम्मा अपने दोनों पुत्रों को गुलाम बनाती है। दोनों पर माँ का इतना अधिकार है की उनका खाना पीना नहाना सब उसकी मर्ज़ी के अनुसार है। बडा बेटा शेखर की पत्नी पंकजम सास से टकराती है। वह समझती है कि शेखर को माँ के बन्धन से छुडाना असंभव है। छोटा भाई श्रीकुमार की पत्नी शारदा सास के डर के मारे रोगिणी बनती है और फिर मर जाती है। पंकजम, श्रीकुमार को माँ की कमज़ोरियों से अवगत कराती है और वे दोनों घर छोडकर चले जाते है।

नारी की अधिकार लिप्सा और कामलिप्सा एक दूसरे से दकराती है। विधवा माँ को डर है कि कहीं उसके पुत्र अपनी अधिकार सीमा से बाहर न चले जाये। पत्नी अपने पति के हृदय पर अपना पूरा अधिकार चाहती है,ताकि कामवासना की पूर्ति और दांपत्य जीवन के आनन्द की प्राप्ति है। दोनों की परस्पर होड में सबकी ज़िन्दगी नष्ट होती है। पंकजम, जानती है, पत्नी के

बदले माँ या माँ के बदले पत्नी पर्याप्त नहीं।१ वह चाहती है कि शेखर अपना कर्तव्य पालन करे। किन्तु शेखर पत्नी की इच्छाओं को अनदेखा करता है। पंकजम जानती की पत्नी के बदले माँ या माँ के बदले पत्नी पर्याप्त नहीं। वह चाहती है कि शेखर अपना कर्तव्य पालन करे। किन्तु शेखर पत्नी की इच्छाओं को अनदेखा करता है। अतः सेखर को समझाने में असमर्थ होकर पंकजम, घर छोड देती है। वह शेखर से यह भी कहती है कि वास्तव में वह पति को दास बनाना चाहती थी। किन्तु सास की अधिकार लिप्सा के सामने वह पराजित हो गयी।

बन्दरगाह की ओर (अषिमुखत्तेक्क)

पुरानी पीढ़ी के कुछ लोग ऐसे है जो झूठे वंशाभिमान से ग्रस्त है और परिवार के गत ऐश्वर्य एवं प्रतिष्ठा के नाम पर वर्तमान गरीबी में भी शेखी बघारते है। वे सदैव नई पीढी की आकांक्षाओं और भावनाओं का दमन करते है।

बूढा केशवन आशान ऐसा एक गृहस्वामी है और उसका बेटा शंकरनकुट्टी प्रगतिशील विचारवाला युवक है। उसके तीन बेटियाँ सरोजनी, सुकुमारी और पदमा जो अतृप्त कामवासना के शिकार है। सरोजनी का पति कुरुप्प निर्धन और बेकार है फिरभी घराने की महिमा पर गर्व करता है। सुकुमारी का पति तंकप्पनपिल्लै घनी, विलासी और चरित्रहीन है। पदमा पच्चीस वर्ष की आयु की अविवाहित नारी है।

सरोजनी अपने पति की गरीबी के कारण दुःखी है। वह धन एवं विलास का मोही है। सुकुमारी को पति में ने सरोजनी को फंसाकार उसके चरित्र्य भंग कर दिया। यह जानकर सुकुमारी पति को छोड जाती है। तंकप्पनपिल्लै ससुर को घोखा देकर उसकी सारी संपत्ति हडप लेता है। पद्मा नौकर के साथ भाग

जाती है। उस तरह आशान का सारा गर्व नष्ट हो जाता है। शंकरनकुट्टी अपनी मेहनत से आनन्दमय जीवन बिताता है। एक मज़दूरिन के साथ विवाह करने के कारण वह घर से निष्कासित है। अन्त में उसके बहनें सहारे केलिए उसके पास चली आती है।

एन. कृष्णपिल्लै ने इस तथ्य पर प्रकाश डाला है कि परिवार स्नेह के कोमल परन्तु सशप्त सूत्रों से बन्धा होता है। जब यह सूत्र कच्चा होता है, परिवारिक रिश्ते टूट जाते है। केशवन आशान के परिवार के बिखरने का एक कारण उनकी अहम्मन्यता है जिससे प्रेरित होकर वह एक मज़दूरिन को अपनी बहु मानने से इनकार करती है। पिता की दायित्वहीनता के कारण छोटी लडकी नौकर को जीवन साथी के रूप में चुनकर उस घर से बच निकलती है। सुकुमारी और तंकप्पनपिल्लै का असफल दांपत्य संबन्ध इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि आर्थिक संपन्नता के बीच भी आदमी खुशी महसूस न करेंगे। तंकप्पनपिल्लै की पुरुष अहंमन्यता उसके आवरण से स्पष्ट होती है, अपनी पत्नी की बहन को अपने विलास पाश में बन्धे रखने से वह न हिचकता।

घडे का दिया (कुडत्तिले विलक्कु)

परिवेश के दबाव के कारण उलझनेवाली ज़िन्दगी को नाटककार ने रेखांकित किया है। आर्थिक विपन्नता असफल प्रेम का कारण बनती है और अतृप्त कामवासना की प्रतिक्रिया ज़रूर मार्मिक होती है। परिवार की आर्थिक सुरक्षा केलिए गोविन्दपिल्लै ने अपनी प्रेमिका को छोडकर एक अमीर धराने की नारी को पत्नी बनाया। किन्तु वह अपने दांपत्य जीवन की सभी खुशियों से वंचित रह गया क्योंकि वह पुरानी प्रेमिका को भूल न सका। उसकी पत्नी

घराने की इज्जत पर गर्व करनेवाली है और वह पत्नी धर्म का पालन कर नहीं पाती। विवश होकर गोविन्दपिल्लै अपनी प्रेमिका पार्वतियम्मा के पास पहुँचता है और दोनों ने दमित इच्छाओं की पूर्ति भी की। वे साथ रहने भी लगे। गोविन्दप्पिल्लै अपनी पत्नी को देखने तक नहीं जाता जो मृत्युशय्या पर पडी रही थी।

पार्वतियम्मा पश्चाताप करती है कि उसके कारण ही गोविन्दप्पिल्लै की पत्नी की मृत्यु हुई। अतः वह अपनी ज़िन्दगी उनके बच्चों केलिए कुर्बान करने की प्रतिज्ञा करती है। वह अपने बेटे को अनदेखा करते हुए भी गोविन्दप्पिल्लै की सन्तान चन्द्रन और माधवी को मातृ समान प्यार देकर पालती है। उनके घर आते समय वह गर्भवती थी और उसके बाद वह सिर्फ वहाँ की नौकरानी रही। लेकिन जब चन्द्रन और माधवी जान जाते है कि उनकी माँ की मृत्यु के कारण पार्वतियम्मा है, तो वे उससे नफरत करने लगते हैं पार्वतियम्मा के अनुनयों का कोई प्रभाव भी नहीं रह गया। वे दोनों घर छोड कर चले जाते हैं।

पार्वतियम्मा का अजीब बलिदान नाटक की कथा का केन्द्र है। पन्मना रामचन्द्रन नायर ने बताया कि 'पूँजी नाटक' में नाटककार ने जिस प्रयोग की कल्पना की है, उसका सफल अभिव्यक्ति करने का प्रयास है 'घडे का दिया'। 'पूँजी' में मातृहीन बच्चों की मां बनकर जीने की प्रतिज्ञा लेने वाली श्यामला है और इस नाटक में उस प्रतिज्ञा का पालन करके जीनेवाली पार्वतिम्मा का चित्रण हुआ है।

मरीचिका (मरुप्पच्चा)

कृष्णपिल्लै के प्रायः सभी नाटक उजडने वाले घर और समझौते कं केन्द्र में रखकर लिखा गया है। आदमी की वैयक्तिक कमजोरियाँ पारिवारिक जीवन के टूटन का कारण बनती है। 'मरीचिका' में उजडनेवाले दांपत्य जीवन की उलझनों का चित्रण हुआ है। गंगाधरन नायर और मीनाक्षी असंतृप्त दांपत्य जीवन के शिकार है। उनकी ज़िन्दगी की शुरुआत ही एक गलती से हुई थी मीनाक्षी ने झूठ बोलकर प्रेमी गंगाधरननायर से विवाह किया था कि वह गर्भवती है। गंगाधरननायर असलियत जानकर क्रुद्ध हो जाता है। और पत्नी से घृणा करने लगता है। अतः उनकी ज़िन्दगी बिगड चुकी है। उसके एक बच्चा भी है जो रोगशय्या पर पडा रहता है। जीवन से ऊबकर गंगाधरन नायर उस बच्चे की मृत्यु चाहता है। वह जन्म से रोगी बच्चे को पत्नी की धोखेबाजी का प्रतीक मानता है। उसका मन द्वेषपूर्ण एवं नीरस बन चुका है।

गंगाधरन नायर का भाई और पत्नी घर आकर वहाँ की हालत से आश्चर्य चकित हो जाते है। उन्होंने गंगाधरननायर और पत्नी को प्रेम की सीख दी और कहा कि धोखेबाज़ी की ज़िन्दगी अर्थहीन है। टी.एस. नायर और प्रमीला के उपचार से बच्चा स्वस्थ हो जाता है। गंगाधरन नायर और मीनाक्षी नयी ज़िन्दगी शुरू करने का निश्चय लेते हैं।

सी.एन. श्रीकण्ठननायर

आधुनिक मलयालम नाट्य साहित्य में सि.एन. का प्रमुख स्थान है रामायण के आधार पर लिखे गये तीन नाटकों के ज़रिए वे ख्यातिप्राप्त हो गये 'कांचनसीता', 'साकेत', तथा 'लंकालक्ष्मी' ये तीनों नाटक रचना और प्रस्तुतीकरण

की दृष्टि से काफी सराहे गए है। पौराणिक कथा के आधार पर मानव मन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण उन्होंने किया है। उनके प्रारंभिक हो नाटक समस्या नाटक की श्रेणी में आते है।

वह फल मत खाओ (आ कनि तिन्नरुत)

भारतीय समाज में आज भी विधवा नारी के प्रति समाज का दृष्टिकोण कैसा है इस तथ्य की ओर नाटककार ने संकेत किया है। रूढ़ीवादी समाज इस बात को भूल जाती है कि विधवा नारी की भी अपनी आशाएँ और अभिलाषाएँ है विधूर पुरुष पत्नी की मृत्यु के तुरन्त बाद भी पुनर्विवाह कर सकता है। समाज उसे दोषी नहीं मानता लेकिन विधवा आँखें उठाकर गैर मर्द की ओर देख ले तो समाज उस पर लाँछन लगाना शुरू करता है।

नाटककार ने सरस्वतियम्मा नामक एक विधवा नारी का चित्रण किया है जो अपने बेटे केलिए जी रही है। लेकिन परिस्थितियाँ उसे प्रेम का एक नया सिरा पकडने केलिए मज़बूर कर देती है। सरस्वतियम्मा अपने पुत्र को डाक्टरी की पढाई केलिए भेजती है। उसकेलिए आर्थिक सहायता करनेवाला बालकृष्णननायर को वह चाहती है। पढाई पूरा करके लौटते ही राजन यह खबर पाकर दुःखी हो जाता है कि उसकी मां चरित्रहीन है। समाज सरस्वतियम्मा को चैन से रहने न देता। बालकृष्णननायर का उससे पवित्र प्रेम है, किन्तु सरस्वतियम्मा अपने पुत्र की इच्छा के विरुद्ध एक नई ज़िन्दगी चुनना नहीं चाहती। अतः बालकृष्णननायर के सारे अनुनयों को उसने अनुसुना किया।

सरस्वती के तिरस्कार के कारण बालकृष्णननायर शराबी बन जाता है। वह पहले शराबी एवं विलासी व्यक्ति था। सरस्वती ही उसे सही राह पर लायी।

बाकृष्णननायर को बडा अफसोस है कि रूढ़िवादी समाज की खोखली मान्यताएँ उसे नेक आदमी बनकर जीने न देगी।[१] राजन माँ को छोडकर मामा के साथ रहने लगा। जिस बेटे केलिए जी रही थी उसका कटुता पूर्ण व्यवहार एवं अलगाह सरस्वतियम्मा बर्ताश्त न कर सकी। अपनी सारी समस्याओं का हल खुदकुशी में वह दूँढती है। माँ की मृत्यु के बाद ही बेटा माँ की असली ममता को पहचानता है। मरने के पहले माँ ने जो चिट्ठी बेटे केलिए लिखी थी, वह पढकर राजन को अपने निर्मम व्यवहार पर पश्चाताप का एहसास होता है। वह यह समझने की कोशिश कभी नहीं की कि 'माँ भी हाड माँस की एक नारी है, उसकी भी अपनी शारीरिक ज़रूरते हैं।'[२]

सरस्वतियम्मा की अभिलाषाओं को अन्याय समझनेवाले और उस पर कीचड उछालनेवाले लोग मान्यता की आड में जो घृणित काम करते है उस पर समाज चुप रहता है। विधवा नारी की सहज वासनाओं को समाज अनदेखा करता है। सरस्वतियम्मा जैसे निरीह नारी को समाज का विरोध करने की शक्ति नहीं है। बेटे के प्रति प्यार भी उसे विवश कर देती है। अतः अपनी ज़िन्दगी की कीमत चुकाते हुए वह समस्याओं का समाधान निकालती है।

घाटे का सौदा (नष्टक्कच्चवटम)

भारतीय समाज में नारी एक पालतू चीज़ मानी जाती है जिसका सौदा पुरुष अपनी मनमानी से कर सकता है। पुरुषों द्वारा बनाये गये बन्धनों में फँसकर नारी दम घुटती है। उसका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता।

---

१. वह फल मत खाओ, सी.एन. श्रीकण्ठननायर - पृ. १५९

अतः उसकेलिए दांपत्य जीवन अभिशाप बनता है। अपने स्वतंत्र अस्तित्व केलिए नारी विद्रोह करने लगती है तो उसे अपनी ज़िन्दगी नष्ट हो जाती है।

शारदा और सुकुमारन की शादी इस शर्त पर हुई है कि शारदा का भाई, सुकुमारन की बहन अम्मिणी से शादी करे। किन्तु शारदा की शादी के बाद उसका भाई अम्मिणी का तिरस्कार करता है कि वह शिक्षित और सभ्य पत्नी चाहती है। शारदा का पति और ससुर इस पर क्रुद्ध हो जाता है और शारदा का पति उसका परित्याग भी कर देता है। शारदा ने अपने दांपत्य जीवन को वरदान समझा था। मगर पति का तिरस्कार उसे इस कटु सत्य से अवगत कराता है कि नारी का सौदा पुरुष करता है और जब चाहे उसका अपमान भी करता। अतः वह अम्मिणी को समझाती है कि शादी करना ज़िन्दगी की ज़रूरत नहीं पुरुष मेधा समाज के शिकंजों में फँसकर तडपने की अपेक्षा अविवाहित रहना ज़्यादा अच्छा है। किन्तु अम्मिणी जैसी बेसहारा लडकी विवाह और दांपत्य में जीवन की सफलता मानती है। वह शारदा के आदर्शों को समझ न पायी। अतः शारदा अपने भाई कृष्णननायर से अम्मिणी के सुहाग की भीख माँगती है। आखिर बहन की इच्छा को कृष्णननायर मानता है और वह अम्मिणी से शादी करता है।

शारदा को अपने पति के प्रेम और दांपत्य जीवन में विश्वास नष्ट हो गया और चोट खाया उसका अभिमान पति का सहारा लेने से उसे रोकती है। वह अपने बच्चे को खुद पालना चाहती है। जब उसको वापस बुलाने केलिए पति आता है तो वह मंगलसूत्र तोडकर उसके सामने फेंक देती है।

परिवर्तन (परिवर्तनम्)

आधुनिक आर्थिक सभ्यता में कला भी धन की दासता से मुक्त नहीं है। सामाजिक प्रतिष्ठा के झूठी पर्दा के पीछे छिपी रहनेवाली अनैतिकता ने कला को सामान्य जनता से अलग किया। साहित्याकर काल्पनिकता में उन्मत्त रहकर परिवेश को भूलते है, वे अमीर लोगों के हाथ की कठपुतली बनते है। जन साधारण के जीवन की परख न करनेवाले साहित्यकार उत्तम कलाकार नहीं हो सकते।

'परिवर्तन' नाटक में ऐसे साहित्यकार का चित्रण है, जो काल्पनिकता के मोह में अमीर लोगों से चिपके रहता है। संगीत, नृत्य आदि मनोरंजक बातों पर उनका ध्यान अटक गया है। वह यह नहीं समझता कि कला जन साधारण की वस्तु है महलों के भोग विलास की नहीं। धन की शान शौकत पर विश्वास करनेवाली उसकी पत्नी नलिनी पति को धोखा देकर उसके मित्र से प्रेम करती है और पति को छोडकर उसके साथ भाग जाती है। निराश एवं दुःखी माधवमेनोन को आश्वास देते हुए पार्वती नामक युवती आती है और वह उसे समझाती है कि कला मेहनतकश जनता का है। पार्वती जन साधारण का प्रतीक है और वह समाज को नया दिया दिखाती है।

ज़िन्दगी के एक अन्य पहलू का भी चित्रण नाटक में किया गया है। मधुसूदननपिल्लै एक सेवानिवृत्त सरकारी अधिकारी है जिसको दीर्घकाल की नौकरी ने नीरस बना दिया। जवानी में वह प्रगतिशील था और सामाजिक प्रतिष्ठा का परवाह किये बिना उसने अपनी प्रेमिका से शादी भी की। किन्तु समाज की झूठी मान्यताओं के कारण वह रूढीवादी हो चुका है। घर के ड्राइवर

की बेटी को चाहनेवाला अपने पुत्र राघव से वह टकराता है और उसे घर से बाहर कर देने की कोशिश करता है। राघवन पिता को समझाता है कि जिस सामाजिक मर्यादा से वह डरता है वह बिल्कुल कपट है। पुत्र के प्रति ममता से विवश होकर मधुसूदननपिल्लै उसकी इच्छा की पूर्ति करता है।

फूलवाली (पूक्कारी)

आर्थिक समस्या मानव जीवन के सभी पहलुओं पर प्रभाव डालती है। गरीब नारी यदि प्रेम करना चाहती हो तो भी वह असफल हो जाती है। समाज की अमीर एवं आधुनिक नारी प्रेम का मर्म न जानकर दांपत्य जीवन बरबाद कर देती है और गरीब नारी ज़िन्दा रहने केलिए अपना शरीर बेचती है। समाज की अनैतिकता नारी की ज़िन्दगी को दर्दनाक बना देती है। इस नाट्य में एक गरीब लडकी की ज़िन्दगी के चित्रण के ज़रिए तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था पर नाट्यकार ने चोट की है।

फूल बेचनेवाली दरिद्र युवती अम्मिणी अपने अन्धे भाई का इलाज करने केलिए वेश्या बनती है। किन्तु वह दिल से पवित्र है, पुरुष की कुटनीति ने उसको भटका दिया। अम्मिणी का भाई नहीं जानता कि बहन अपना शरीर बेचकर उसका इलाज कर रही है। अम्मिणी को अपनी कामवासना की शिकार बनानेवाला पाच्चुक्कुरुप्प नामक व्यक्ति जब उसको धमकी देता है कि भाई को उसका असलियत बता देगा तो उसको विवश होकर उसकी हत्या करना पडा।

अम्मिणी के निर्मल हृदय के समझनेवाला और उससे प्रेम करनेवाला पुलीस कर्मचारी पदमनाभन उसके भाई की देखभाल करता है और जेल में सज़ा भोगनेवाली अम्मिणी की इन्तजार में जी रहा है।

नारी के अलग रूप का भी चित्रण नाटक में है। धन और प्रतिष्ठा के धमण्ड में पति को नकारनेवाली नारी का रूप नाटक में मिलता है। पदमनाभन के मित्र राजन की पत्नी रजनी पति का अपमान करती है और उसकी इज़्जत को चकनाचूर कर देती है। नाटककार ने व्यक्ति किया है कि आधुनिक शिक्षित नारी दंभ के कारण दांपत्य की महत्ता से अनिभिज्ञ रहती है।

तिक्कोडियन

तिक्कोडियन का असली नाम पी. कुंजनन्तननायर है। वे अध्यापक एवं संपादक रहे। रूढिवादी पुरानी पीढी और प्रगतिवादी नयी पीढी की आपसी टकराहट और संघर्ष के इर्दगिर्द उनके नाटकों के कथ्य घूमते है।उनके नाटकों में प्रायः जीवन के प्रति अशावादी दृष्टिकोण ही दीख पडता है। तिक्कोडियन नये प्रयोगों के पीछे भटकते नहीं, यश के प्रति उनका मोह भी नहीं। वे कला को कमाई का साधन भी नहीं मानते। उन्होंने अपने नाटकों में चारों ओर के परिवेश की जानी पहचानी ज़िन्दगी को ही रुपायित किया।

तिक्कोडियन किसी भी राजनीतिक दल या आदर्श के प्रयोक्ता नहीं थे। बुराई से भलाई की ओर प्रयाण करनेवाले पात्रों की सृष्टि उन्होंने की। उनके नाटकों का मूलस्वर संघर्ष है। संघर्ष तो विभिन्न स्तर के है। प्रायः रूढ़िवादी एवं प्रगतिशील व्यक्तित्वों के बीच का संघर्ष इसका आधार है। वे जीवन को एक अनन्त प्रवाह मानते है। उस प्रवाह की शीतलता में उन्होंने सफलता पायी है।[१]

---

१. तिक्कोडियन के नाटक भूमिका, एन.पी. मुहम्मद - पृ. १२

तिक्कोडियन के प्रमुख नाटक है, 'ज़िन्दगी', 'चिनगारी', 'नयी भूल', 'एक परिवार', 'टूटी हुई कडी' और 'बेप्रसूत माँ'।

ज़िन्दगी

आम आदमी की ज़िन्दगी की पहली ज़रूरत अपनी ज़िन्दगी की सुरक्षा है। आर्थिक, सामाजिक और नैतिक रूप से सुरक्षित होकर ही व्यक्ति का जीवन सफल होता है। दुनिया में कुछ लोग ऐसे है, जो अमीर होने के गर्व में गरीबों पर अत्याचार करते है और किसी न किसी प्रकार उनका जीवन बर्बाद करने का प्रयास करते है। वे लोग सिर्फ अपने सुख चाहते है। उसकी राह में बाधा डालनेवाले सभी को वे मिटाते है। झूठा अभिमान तथा मिथ्या गौरव के नाम पर गर्व करते हुए अपने रूढिवादी विचारों से दूसरों का अपमान करना उनका ध्येय रहता है।

'ज़िन्दगी' नाटक में गरीबी की समस्या प्रमुख है। राधा नामक एक अध्यापिका है जो अपने तुच्छ वेतन से पिता का इलाज करवाती है और दिन में एक बार भूख मिटाने की कोशिश करती है। उसके पिता रामनकुट्टिनायर तो स्वभिमानी है, उसका रूढ़िगत विचार है कि लडकी का नौकरी करना अपमान है। अतः वह हमेश चिन्तित है। सेवानिवृत्त पुलीस अधिकारी कृष्णक्कुरुप्प का बेटा वेणु राधा से प्यार करता है। वह भई नहीं चाहता कि राधा नौकरी करे। वह राधा और पिता की देखभाल करने को तैयार है। मगर इसके पिता इसका विरोध करता है। वह स्कूल के प्रबन्धक से कहकर राधा को नौकरी से निकालता है। पिता और वेणु आपस में टकराते हैं। क्रुद्ध होकर पिता वेणु को घर से निष्कासित कर देता है। अपने पिता की मृत्यु के बाद राधा अनाथ हो जाती है। वेणु राधा के साथ घरबार छोडकर विशाल दुनिया की ओर जोते है।

पुरानी पीढ़ी का विचार है कि लडकी का नौकरी करना खानदान के गौरव केलिए अपमान है। नाटक में रोसे पात्र है जो नोकरी करनेवाली राधा के चरित्र पर दोषारोपण लगाते है और उसे वेश्या का नाम देते है। राधा का प्रेमी वेणु भी रूढ़ि से मुक्त नहीं। वह भी उसकी नौकरी को अपमान समझता है। उसकी राय में पुरुष ही स्त्री का अश्रय है। राधा प्रगतिशील युवती है वह स्वतंत्रता चाहती है और नौकरी करके अपने पिता की सेवा करना चाहती है। उसकेलिए प्रेम का भी द्वितीय स्थान है। वह जानती है कि वेणु में भी रुढ़िवाद की जडे है।[१] अतः वह कहती है हमारा रिश्ता सफल नहीं होगा। वेणु राधा को इतना चाहता है कि वह सबकुछ छोडकर उसे स्वीकार करता है। राधा को भाई समान प्यार देनेवाला शंकु नामक नौकर भी उनके साथ जाता है। यों विचार और प्रवृत्ति में साहस रखनेवाली नयी पीढ़ी की विजय होती है।

चिनगारी (तीप्पोरी)

आधुनिक युग की सामाजिक व्यवस्था में मानविक मूल्यों का कोई महत्व नहीं है। समाज के हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार एवं अत्याचार होता रहता है। प्रेम और दया जैसी भावनाओं की कीमत कोई नहीं समझता है। मूल्यों को बनाये रखने की कोशिश जो करता है उसे कटु अनुभव भोगना पडता है।

निष्ठुर एवं स्वार्थी प्रभाकरन सिर्फ धन कमाने और समाज में झूठी प्रतिष्ठा मिलने को महत्व देता है। पत्नी और बच्चों के प्रति उसके मन में ममता नहीं। उसका भाई राघवन जो उदार हृदयवाला है उसका विरोध करता है। वह जानता है कि भाई अनैतिक मार्ग से धन कमाता है। इनके पिता चन्तुक्कुट्टि

---

१. तिक्कोडियन के नाटक, ज़िन्दगी - पृ. ६८

मेस्तिरी है जो पुराने सरकारी कर्मचारी है। प्रभाकरन पिता की वेष-भूषा एवं आचार व्यवहार पर क्रुद्ध होता है कि उसके गौरव केलिए अपमान है। प्रभाकरन की पत्नी जानकी, राघवन से प्रेम करती थी, किन्तु प्रभाकरन अपने घन और अधिकार के बल पर उससे शादी करता है।

चात्तुक्कुट्टि मेस्तिरी प्रभाकरन की अवहेलना पर दुःखी है, फिर भी उसका अपने पुत्र पर गर्व है कि वह धन कमाता है। वह राघवन से कहता है कि भाई से झगडा न करे। राघवन अपने पिता को बहन प्यार और आदर करता है। प्रभाकरन की पत्नी जानकी पति की सेवा करने में तनिक भी चुंकती नहीं। वह आदर्श माता भी है। फिर भी प्रभाकरन उस पर दोषारोपण लगाता है कि वह उससे प्यार नहीं करती। उनके दो सन्तान है नन्दिनी और उण्णि। नन्दिनी राजन से प्यार करती है जो प्रभाकरन के आश्रय में रहनेवाला एक अनाथ लडका है। इनका प्रेम संबन्ध जानकर प्रभाकरन राजन को घर से निकाल देता है। नन्दिनी दुःखी हो जाती है। प्रभाकरन और राघवन के बीच वाद-विवाद हो जाता है, क्योंकि जब प्रभाकरन का मित्र आता है तो उसने पिता का परिचय नौकर के रूप में दिया। उसके अभिमान को इतना ठेस पहूँचता है कि वह आत्महत्या करता है। दादा की लाश देखकर उण्णि परेशान हो जाता है और फिर मानसिक सन्तुलन खो बैठता है। राघवन घर छोडकर चला जाता है।

समय बीतने पर प्रभाकरन पश्चाताप करने लगा। घर की दर्दनाक स्थिति पर वह चिन्तित है। वह राघवन को वापस बुलाता है। राघवन के आते ही उण्णि पूर्वस्थिति में आने लगा। मगर प्रभाकरन आत्महत्या करता है और वह खबर पाकर उण्णी फिर से पागल बन जाता है।

खोनेवाले मानवीय मूल्यों को अपनाने का सन्देश इस नाटक द्वारा दिया गया है।

नयी भूल (पुतिय तेट्ट)

माता-पिता का अधिकार सन्तानों को सिर्फ देखभाल करने में ही नहीं, उसकी जिन्दगी की सभी कदमों की ज़िम्मेदार भी माँ-बाप है। पालनेवालों के दृष्टिकोण का बडा असर सन्तानों के जीवन में पडता है। इस नाटक में एक ऐसा पिता का चित्रण हुआ है जो सन्तानों के बडे होने की सहायता देता है, वह उन्हें पालता नहीं, पलने में पथ प्रदर्शक बनता है।

शंकरक्कुरुप्प के दो बेटे हैं रघु और मधु। रघु ने नारायणमेनोन की बेटी शान्ता से प्रेम किया और पिता के आशिर्वाद से विवाह भी किया। किन्तु दोनों के बीच झगडा होता है और शान्ता के पिता का अहंकार एवं निष्ठूरता के कारण वे अलग हो जाते है। शान्ता का एक बच्चा भी है। रघु, शान्ता दोनों दुःखी है, मगर वे मिलन केलिए कुछ नहीं करते हैं।

शंकरक्कुरुप्प आदर्शवान आदमी है वह मानवतावादी है, विश्वप्रेम में विश्वास रखता है वे सब को उपदेश देता है कि सोच समझकर काम करना, ज़िन्दगी में भूल मत करना। जब उसे पता चल जाता है कि शशि का भाई मधु, शान्ता की बहन मीनु से प्यार करती है तो वह करता है, प्यार करना भूल नहीं किन्तु उससे संघर्ष मत बढाना, नये संबन्धों से शान्ति होना है, बिगडे हुए संबन्धों को सीथा करना है।

शान्ता और मीनु के पिता नारायणमेनोन इसके विरोधी व्यक्तित्ववाला है। वह पत्नी और बेटियों पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहता है। अपने

अहं की मान्यता केलिए वह दूसरों को दुःख पहुँचाता है। उसकी हठ के कारण ही शान्ता और रघु की ज़िन्दगी बरबाद हो रही है। रघु शान्ता के घर जाकर अपने बच्चें को उठा लेता है। वहाँ नारायण मेनोन के साथ बहस होता है। शान्ता उसे रोकने की कोशिश भी करती है। ये सब देखकर बच्चा घबराता है और वह बीमार हो जाते है। बच्चे को न देखने के कारण शान्ता पगली सी हो जाती है।

मधु और मीनु का प्रेम संबन्ध जानकर रघु क्रुद्ध हो जाता है। वह कहता है प्रेम करना छोड दो। किन्तु मधु को अपने प्रेम पर पूरा विश्वास है। वह जानता है कि प्रेम कमज़ोर व्यक्ति का नहीं, प्रेम अनश्वर है और दिव्य है। मीनु और मधु अपने प्रेम पर अडल रहते है। मीनु पिता से कहती है, वह विवाह करना नहीं चाहती, मगर वह प्रेम ज़रूर करेगी, वह भी मधु से अन्त में शंकरक्कुरुप की ममताभरी बातों से नारायणमेनोन अपनी हठ छोड देता है। शान्ता ससुर के साथ जाने को तैयार हो जाती है। शंकरक्कुरुप बताता है कि माता पिता के हाथ आशीर्वाद देने केलिए, बन्दूक पकडने केलिए नहीं। धमकी देकर या डराकर बच्चों का पालन करना सही नहीं। ममता और प्यार परोसकर उनका दिल जीतना चाहिए।

शंकरक्कुरुप और शान्ता का ममतापूर्ण बरताव देखकर नारायणमेनोन की आँखें खुल जाती है। वह समझता है कि पिता सिर्फ अधिकार का स्थान नहीं, ममता का स्रोत भी है। इस प्रकार मधु और मीनु का प्रेम एक नयी भूल नहीं बनती, बल्कि उससे सभी गलतियाँ सुलझी जाती है।

एक परिवार (ओरे कुटुंबम)

महत्वाकांक्षा एवं स्वार्थपूर्ति के मोह में व्यक्ति समष्टिगत भलाई की उपेक्षा करता है। अन्ततः वह देश के भविष्य को भी खतरे में डालनेवाला बनता है। परिवार तो समाज की छोटी सी इकाई है। पारिवारिक विघटन की प्रवृत्ति देश केलिए हानिकारक सिद्ध होती है। इस विघटनात्मक प्रवृत्ति के खिलाप एकता का नारा लगाना नाटककार का मकसद रहा।

राघवन विश्वप्रेम और एकता पर विश्वास रखनेवाला आदमी है। वह सम्मिलित परिवार में ज़िन्दगी की खुशी महसूस करता है। उसके ससूर का जीवन आदर्श भी इससे भिन्न नहीं। किन्तु अलग दृष्टिकोण रखनेवाली उनकी सन्तानों ने अपना अपना परिवार बसाना चाहा तो ससुर अपने प्रयास में असफल रह गया। सन्तानों की स्वार्थता ने पिता को पागल बना दिया। राघवन ससुर के अनुभव से सतर्क होकर अपनी पुत्रियों दामादों को एक साथ रहने की चेतावनी देता है।

राघवन की बडी बेटी भारती का पति विश्वनाथन सम्मिलित परिवार में रहना नहीं चाहता। वह अलग परिवार बसाने केलिए पत्नी को प्रेरित करता है। किन्तु भारती पिता को दुख पहुँचाना नहीं चाहती। अतः पति उससे रूढकर चला जाता है। पुत्रि की विवशता पर राघवन चिन्तित हो जाता है। दूसरा दामाद राघवन के आदर्शों का आदर करनेवाला है।

नाटककार ने अन्तर्जातीय विवाह का चित्रण भी नाटक में किया है। अधिकांश मां-बाप यही चाहते है कि अपना बेटा अपने धर्म की बहु को घर लाये। राघवन की पत्नी भी जातीयता की भावना को महत्व देती है। अतः जब

खबर आती है कि उनका बेटा जयन एक शरणार्थी लडकी से शादी करके आ रहा है जिसके धर्म और जाति के बारे में कोई पता नहीं तो उसकी माँ विरोध करने लगती है। किन्तु राघवन रूढियों को टुकराने से नहीं हिचक्ता और बहू को स्वीकार करने केलिए तैयार हो जाता है। अपने पुत्र के आदर्शों पर वह गर्व भी करता है।

राघवन का पागल ससुर अपने सेवक और घरवालों के ममताभरे उपचार के कारण स्वस्थ हो जाते है। किन्तु पारिवारिक झगडे के उलझन उसका दिमाग और भी उलझ जाता है और आत्महत्या में परिणत होता है। एकता के महान आदर्श पर जो आत्मबलिदान हुआ है। उससे विश्वनाथ की आँखें खुलती है और वह राघवन का पुत्र बनकर वहीं रहने को तैयार हो जाता है।

टूटी हुई कडी (अट्टुपोया कण्णी)

विद्वेष और प्रतिहिंसा के कारण मानव मन नीरस एवं शुष्क बनता है। व्यक्ति की प्रतिहिंसा मात्र उसकी ज़िन्दगी को नहीं बल्कि दूसरों की ज़िन्दगी को भी उजाड देती है। विद्वेष के कारण संत्रास एवं कुंठा का शिकार बने व्यक्ति को अकेलेपन का तीखा एहसास होता है। चात्तुण्णिनायर ऐसा एक अन्तर्मुखी व्यक्ति है जो पत्नी और सन्तानों से रूढकर एकान्तवास करता है। वह सेवानिवृत्त पुलीस कर्मचारी है। उसकी शिकायत यह है उसने अपने परिवार केलिए बहुत कुछ किया। अपनी सन्तानों की उन्नति केलिए कोशिश की, किन्तु वे सब बडे होकर पिता का तिरस्कार कर रहे है।

चात्तुण्णिनायर अपने घर के द्वार हमेशा बन्द रखता है। वहाँ प्रवेश करने का अधिकार सिर्फ उसका सेवक रामन को है। वह किसी और को देखना नहीं

चाहता। हर महीने उसका पुत्र मणि-आर्डर भेजता है। आर्थिक विषमता होते हुए भी वह उसे वापस भेजता है। इस प्रकार एकान्तवास में वह मानव सहज सभी गुणों से वंचित रहता है।

उसके पडोस के दो बच्चे हैं बाबु और सति। वे एक दिन चात्तुण्णिनायर के घर के अहाते में आते हैं। मगर वह उन्हें बाहर निकाल देता है। फिर एक दिन बाबु अकेले वहाँ आता है चात्तुण्णिनायर के दिल में सुप्त पडे पितृवात्सल्य को जगाने में वह सफल होता है। बाबु का असली नाम विजयन था। उसके बेटे का नाम भी वहीं था। अपनी सन्तानों के प्रति उसके मन में जो विद्वेष था वह कम होने लगा। पर तब तक उसका स्वास्थ्य बिगडने लगा था। वह पत्नी, बेटे तथा पोते को देखने की इच्छा प्रकट करता है। किन्तु उनके आने से पहले ही उसकी मृत्यु हो गयी।

चात्तुण्णिनायर ने अपने जीवन भर सन्तानों की उन्नति केलिए प्रयत्न किया। नौकरी करते समय धन कमाने केलिए अनैतिक मार्गों को अपनाने के कारण बदनाम भी हो गया। किन्तु उसके पुत्र और पुत्री अपनी ज़िन्दगी खुद चलाने लगे। उन्होंने पिता की इच्छा के विरुद्ध विवाह किया। चात्तुण्णिनायर ने नाराज़ होकर पत्नी को भी घर से निकाल दिया। वह आर्थिक रूप से पराधीन होगया, फिर भी वह पुत्र और पुत्री की सहायता स्वीकार नहीं करता। उसका पुत्र विजयन भी उसके दृढ निश्चय से अवगत है। अतः वह पिता को मिलने नहीं आया।

स्वार्थ, गर्व एवं विद्वेष के कारण तडपनेवाला मानव और उसकी बिगडी ज़िन्दगी का स्पष्ट चित्रण नाटककार ने किया है।

बेप्रसूत माँ

प्रतिहिंसा की भावना से उत्तेजित एक नारी की कथा इस नाटक में प्रस्तुत की गयी है। मीनाक्षियम्मा अपने भतीजे की देखरेख पुत्र समान करती है। वास्तव में वह यह चाहती है कि वह लडका प्रभाकरन कभी भी उसके पिता से आस्था न रखे और सिर्फ अपनी आज्ञाओं का पालन करें। अतः प्रभाकरन दुर्बल मानस बनता है। मीनाक्षियम्मा की बहन जानकी का पति कृष्णमेनोन को मिनाक्षियम्मा चाहती थी। मगर उसने उसका तिरस्कार करके जानकी से शादी की। प्रभाकरन के जन्म के तुरन्त बाद जानकी की मृत्यु हुई। इसके बाद कृष्णमेनोन ने मीनाक्षियम्मा से शादी करने की आशा प्रकट की तो उसने नकारा।

मीनाक्षियम्मा के मन में कृष्णमेनोन के प्रति प्रतिहिंसा की भावना सशक्त रहती है। उसने अपनी आशा और आकांक्षाओं को दबाकर, उस भावना को उजागर किया। बहन के कमरे में किसी को प्रवेश करने नहीं दिया, उसके हृदय के समान वह भी सदा बन्द रहता है।वह प्रभाकरन को पिता से अलग करके पालती है। अतः पिता के प्रति उसके मन में विशेष ममता नहीं है। वह मीनाक्षियम्मा के निदेशानुसार जी रहा है, सगी माँ की याद तक उसे नहीं है। लेकिन प्रभाकरन की शादी के बाद घर की वातावरण बदलता है।

प्रभाकरन की पत्नी मालिनी स्वतंत्र विचारवाली एवं व्यवहारकुशल नारी है। वह पति के घर आते ही समझती है वहाँ सबकुछ माँ के आशानुसार होते है।वह घर है। मीनाक्षियम्मा ने अपनी बहन के जिस कमरे को बन्द रखा था। उसे खुला रखने में वह सफल निकलती है। ममतापूर्ण आचरण से वह सास को

उसकी चारित्रिक कमजोरियों एवं प्रतिहिंसा के खतरनाक परिणामों से अवगत कराती है। मालिनी के प्रभाव से घर की नौकरानी भी नये सिये से सोचने लगती है कि हर एक व्यक्ति को अपना स्वतंत्र जीवन जीने का हक है।

मालिनी के आचार व्यवहार से मीनीक्षियम्मा बेचैन हो जाती है। वह समझती है कि उसकी प्रतिहिंसा व्यर्थ हो गयी है। वह घर छोडकर पूजा-पाठ करने के बहाने पडोस की झोपडी में रहने लगी। यही नाटक की समाप्ति है।

के.टी. मुहम्मद

धार्मिक समस्याओं को केन्द्र में रखकर नाटक लिखने वाला के.टी. का मलयालम नाटक साहित्य में अद्वितीय स्थान है। उनके प्रमुख नाटक है, 'यह धरती है', 'काफर', 'दूध न देनेवाली गाय।'

यह धरती है (इतु भूमियाण)

पुरुष मेधा समाज के शिकंजों में पडकर दम घुटनेवाली नारी का चित्रण इस नाटक में किया गया है। मुसलमान समाज के रूढ़िगत विचारों की शिकार मुख्यतः नारी है। सामाजिक निर्दयता गरीब लडकी को चरित्रहीन स्थापित करना चाहती है। नाटककार ने बताया है कि रोज़ा-नमाज़ के द्वारा मनुष्य अपनी बुराइयों से नहीं बच सकता।[१]

धनी एवं रुढ़िवादी ताऊ के विरोध करने वाला प्रगतिशील नवयुवक है खालिद वह एक गरीब एवं निराश्रय युवती को अपने घर आश्रय देता है। उसका ताहू तो अनैतिक मार्गों से धन कमाता है और हज करने की तैयारी

---

१. यह धरती है, के.टी. मुहम्मद - पृ. २

करता है। खालिद की उदार भावना पर वह क्रुद्ध हो जाता है और सारा समाज भी उसका साथ देता है। मगर आखिर खालिद का ही विजय होती है।

खालिद जानता है कि यदि वह उस निस्सहाय लडकी को आश्रय नहीं देता तो वह कुमार्ग पर चलकर, सडक पर दम तोड देगी। अतः वह उसे बचाता है। इस नाटक का इस्लाम समाज पर बडा प्रभाव पडा। नंपूतिरी समाज के सुधार के क्षेत्र में वी.टी., एम.आर.बी. और प्रेमजी का जो महत्व है वही स्थान इसलाम समाज में के.टी. मुहम्मद का भी है।

काफर

के.टी. मुहम्मद परंपरागत रूढिवादी धार्मिक मान्यताओं का विरोध करनेवाला नाटककार है। धर्म की कट्टरता को परिवार और देश केलिए वे खतरनाक मानते है। उनकी राय है, हिन्दुओं को ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया जाना या मुसलमान को हिन्दु बनाया जाना सबसे बडी अधार्मिक बात है। 'काफर' नाटक में के.टी. ने मुस्लीम समाज की रूढ़ियों का चित्रण करके उसका विरोध प्रकट किया और समाज में कुछ स्वार्थी एवं घमंडी अमीरों के मुखौटेधर्मी व्यक्तित्व को बेनकाब करने की कोशिश की।

घमंडी एवं रूढिवादी इब्राहिमकुट्टि हजी मुस्लीम समाज के प्रतिष्ठित आदमी है। वह मानता है कि मुस्लीम लडकी का काफर की तरह जीना उसकेलिए अपमान है। अतः वह अपनी बेटी नफीसा को अशिक्षित एवं रूढिगत विचारों से पालता है। नारी शिक्षा एवं नारी स्वतंत्रता का वह विरोध करता है। अब्दुलखादर, उसकी बटी सुलेखा खादर का मित्र शंकरननायर प्रगतिशील विचारवाले है। अब्दुल खादर अपनी बेटी को कालेज भेजता है। हाजी मानता

है कि मुस्लीम युवती को कालेज भेजना इस्लाम धर्म के विरुद्ध है। भिन्न संघर्ष पैदा होता है।

हाजी की धार्मिक कट्टरता इस बात से स्पष्ट हो जाती है कि वह अपने नौकर चानन का धर्म परिवर्तन करवाता है किन्तु हरिजन चात्तन को मूस्सा के रूप में मानने केलिए रुढ़िवादी समाज तैयार नहीं है। चात्तन महसूस करता है कि वह अपनी पुरानी रीति रिवाज़ विश्वास आदि भूल न सकता। इस धर्म परिवर्तन के पीछे हाजी की हठ ही काम कर रही थी। मुखौटे में छिपे हुए हाजी का व्यक्तित्व तभी खुल जाता जबकि समाज पर सहस्य जान लेता है कि बरसों पहले हाजी ने मिथ्याभिमान के कारण अपनी अवैद्य सन्तान सुलेखा को त्याग दिया।

उस लावारिस सन्तान को खादर ने एक नयी ज़िन्दगी दी। इसलिए हाजी ने खादर को अपना शत्रु माना। कुछ निहित स्वार्थों के कारण ही खाजी ने अपने नौकर चात्तन को मूस्सा बनाया। किन्तु जब वह सुनता है कि मूस्सा अपनी बेटी नफीसा को चाहता है तो उसकी असली धार्मिक कट्टरता अपना रंग दिखाती है। नफीसा हिन्दु और मुसलमान में कोई उत्तर नहीं मानती। नाटककार की मान्यता है कि जाति-पाँति, ऊँच-नीच जैसी दीवारों से जकडे समाज को तोडना है।

दूध न देनेवाली गाय (करवट्टा पशु)

आर्थिक विवन्नता के कारण नीरज एवं निर्दय होनेवाले मानव मन के विभिन्न क्रिया कलापों का उल्लेख इस नाटक में मिलता है। आदमी के आन्तरिक संघर्षों का परिवारिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करने का प्रयास नाटककार ने किया है।

धन की कसौटी पर रिश्तों को तौलने वालों केलिए एक मरीज आदमी चाहे वर अपना सगा संबन्धी क्यों न हो, की अपेक्षा दुधारु गाय ही मूल्यवान है। राजयक्षमा से पीडित पुरुषु की ज़िन्दगी का सबसे का अभिशाप यही है। व्यार एवं ममता का अभाव ही पुरुष की ज़िन्दगी की सबसे बडी समस्या है। विमाता केलिए एक सौतेला पुत्र खासकर एक मरीज़ हमेशा एक बोझ है। पुरुषु के पिता इस बात से अवगत था कि अपने बेटे को उस घर में कोई चैन या सुख नहीं मिलते है। विमाता और सौतेला भाई उससे नफरत करते हैं। पुरुषु को तंग करना ही वे चाहते है। उन्हें मालूम था कि पुरुष को अपनी गाय बहुत प्यारी है, लेकिन पुरुषु की इलाज करने के बहाने वे पुरुष की गाय कसाई को बेचना चाहते है। उनका कहना है कि दूध न देनेवाली गाय को पालने से कोई लाभ नहीं।

नाटककार ने इस घटना के माध्यम से प्रतीकात्मक अर्थ को व्यंजित किया है। मरीज़ पुरुषु और दूध न देनेवाली गाय दोनों समान धरातल पर आते हैं। कसाई के हाथ में आनेवाले गाय से बदत्तर ज़िन्दगी ज़िन्दा पुरुषु को भोगना पडती है।

के. सुरेन्द्रन

मलयालम समस्या नाटक के क्षेत्र में के. सुरेन्द्रन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आदमी के मानसिक संघर्ष एवं मानव मूल्यों को उन्होंने अपने नाटकों में प्रमुखता ही। उनके प्रमुख समस्या नाटक है - 'बलि' और 'कांच का बर्तन।'

बलि

प्रेम और त्याग के महत्व को नाटककार ने उभारा है। आर्थिक तंगी के कारण असफल प्रेम का दुःख झेलनेवाले पात्र इसकी विशेषता है। अल्पवेतन

भोगी करोड़ों आदमियों की यही हालत है। गोविन्दन और माधवी स्कूल के अध्यापक है। वे आपस में प्रेम करते है। किन्तु माता-पिता की आकस्मिक मृत्यु के कारण माधवी पर अपने परिवार की देखभाल का दायित्व आ जाता है। नौकरी से मिलनेवाली थोडी सी आमदनी से अपनी गृहस्थी चलाना और भाई बहन की देखभाल करना दूभर समझकर माधवी अविवाहित रहने का निश्चय लेती है। लेकिन गोविन्दन को वह भूल न सकी। माधवी के फैसले से दुःखी होते हुए भी गोविन्दन दूसरी शादी करता है।

माधवी भाई और बहन का पालन अच्छी तरह किया। वे दोनों अपने पैरों पर खडे रहने लगे तो माधवी को भूल जाते है। अतः वह अकेली एवं निराश्रय बनती है। गोविन्दन तो ज़िन्दगी की बोझ से थका हुआ है। उसने अपने परिवार केलिए कडी मेहनत की। उसकी पुत्री जिस पर गोविन्दन की आशआ आकांक्षाएँ निर्भर थी वह अपने प्रेमि के साथ विवाह करती है। गोविन्दन उससे सारा संबन्ध तोड देता है। माधवी अपनी शेष ज़िन्दगी गोविन्दन के परिवार की रक्षा केलिए अर्पित करती है। वह गोविन्दन को समझाती है कि बेटी देवकी से कोई भूल नहीं हुई। माधवी अपना जीवन औरों केलिए बलिदान करती है। उसने ज़िन्दगी की मज़ा नहीं ली। माधवी के बलिदान के बाद गोविन्दन भी अपने दुःखों से शाश्वत मुक्ति की प्रतीक्षआ करता है। माधवी की ज़िन्दगी उस दिये के समान है जो खुद जलते हुए दूसरों को रोशनी देता है।

कांच का बर्तन (पलुंकुपात्रम)

पुरुष द्वारा नारी पर होने वाले अन्याय को इस नाटक में दर्शाया गया है। हृदय हीन समाज में यातना सहकर भी नारी को उसी अन्यायी साज की

शरण लेनी पडती है। कमलम्मा को घरवालों ने इसलिए निष्कासित किया कि उसने अपने मनपसन्द पुरुष के साथ शादी की। विधवा बनने के बाद वह अपनी बेटी सती केलिए जी रही है। बेटी की शिक्षा में वह बहुत ध्यान देती है। वह कामना करती रहती है कि बेटी अच्छा अंक पाकर पहली श्रेणी में परीक्षा उत्तीर्ण हो जाए। इस महत्वाकांक्षा के कारण वह एक साजिश की शिकार बन जाती है। ट्यूटोरियल कालेज के अध्यापक कण्णंकरा के झूठे वादे पर वह फँस जाती है कि सती केलिए प्रश्न पत्र वह चुराकर देगा।

विधवा कमलम्मा अपनी यौन भावनाओं पर पूरा संयम रखकर जी रही थी। लेकिन कण्णंकरा ने उसे फुसलाया सिर्फ माँ को ही नहीं, बल्कि भोली भाली बेटी को भी उसने अपने जाल में फँसाया। गर्भवती सती को भ्रूणहत्या की औषधी देकर माँ ने समस्या का समाधान करना चाहा। किन्तु वह निरीह लडकी मर जाती है, कमलम्मा भी अपने सारे दुःखों से मुक्ति मिलने केलिए खुदकुशी की राह अपनाती है।

नाटककार ने कमलम्मा के अनुभवों के माध्यम से यह व्यक्त किया है कि नारी जीवन कांच का बर्तन है जैसे थोडी सी असावधानी उसे चकनाचूर कर देती है। चन्द क्षणों केलिए कमलम्मा महत्वाकाक्षा की शिकार बनी और उसे सबकुछ नष्ट हो गया।

एन.एन. पिल्लै

मलयालम नाटककारों में एन.एन. पिल्लै का विशिष्ट स्थान है। भारत की स्वतंत्रता की कामना, गरीबी, बेकारी, तथा सामाजिक मूल्यों के ह्रास ने

उनको विद्रोही बना दिया। उन्होंने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने केलिए व्यंग्य का सहारा किया समाज सुधार ही उनका लक्ष्य रहा।

अपने नाटकों में एन.एन. पिल्लै मानव, समाज, शासन व्यवस्था, आर्थिक संबन्ध, धर्म, ईश्वर, जन्म, मृत्यु आदि के प्रति अपना दृष्टिकोण व्यक्त करते हैं। वे व्यंग्य के माध्यम से समाज में क्रान्ति फैलाना चाहते हैं। अपने नाटकों पर होनेवाली अश्लीलता के आरोप को वे नकारते हैं कि वे सिर्फ नंगे यथार्थ की प्रस्तुति है, अश्लीलता नहीं। एम.पी. अप्पन का कथन है कि "उज्वल प्रतिभा, अचंचल विश्वास, अनुपम साहस एवं कडी मेहनत, से एन.एन. पिल्लै ने नाट्यकला में उन्नति प्राप्त की है।"[१]

कापालिका (कापालिका)

आर्थिक तंगी के कारण पुरुष के चोंचलेबाज़ी में फँसनेवाली बेचारी औरत को वह अपने सार्थ लाभ का साधन मानता है। सारी को विश्या बनानेवाली यह नीति तो वेश्या बनानेवाली यह नीति तो वेश्या का अपमान करता है किन्तु समाज उसके शरीर के भोगी हैं। पुरुष के इस छल के कारण वेश्या बननेवाली रोसम्मा की कहानी नाटक में प्रस्तुत है।

अपने ही दुल्हे के धोखेबाज़ी के कारण रोसम्मा की ज़िन्दगी बरबाद होती है। नौकरी का वादा करके उसे मद्रास ले जानेवाला व्यक्ति भी उसका शरीर बेचकर धन कमाता है। रोसम्मा खुद बंबई चली जाती है और वेश्यावृत्ति से धन एवं प्रतिष्ठा पाती है। दुनिया उसके धन को महत्व देती है, मगर

---

१. केली, दिसंबर ९९९५ - जनवरी १९९६

वेश्यावृत्ति पर घृणा करती है। रोसम्मा जानती है कि धन धोखेबाज़ी का प्रतीक है। वह प्रेम पतिव्रताधर्म नारीत्व आदि बातों पर विस्वास नहीं करती। उसका मानना है कि वे सब पुरुष से बनाये हुए फन्दे हैं। आश्रम की स्थापना केलिए पैसे माँगकर आनेवाले स्वामिजी को वह पहचानती है कि वह उसके पुराना दुलहा ही है। रोसम्मा उसे पुलीस हवाले कर देती है।

रोसम्मा का परिवार बेटी की धन दौलत के पर खडा है। घर आकर रोसम्मा को पता चल जाता है कि अपनी छोटी बहन का दुल्हा अलक्साण्डर और उसके पिता जो उसके पूर्वपरिचित आद्मी है एवं धन लोभी है। वह बहन को समझाती है कि प्रेम का कोई महत्व नहीं पैसे का ही महत्ता है। एक वेश्या की बहन को बहु के रूप में स्वीकार करने केलिए पिता और पुत्र तैयार नहीं है रोसम्मा उन्हें धमकी देकर शादी केलिए मज़बूर कर देती है।

क्रोसबेल्ट

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सामाजिक नीति जनतंत्र की स्थापना सही दायरे पर नहीं हुई। अतः देशकी स्वतंत्रता केलिए अपना जीवन अर्पित करनेवाले लोगों की स्थिति दर्दनाक बनी है। गरीबी और अनैतिकता उन्हें विवश कर देती है।

'क्रोसबेल्ट' में एक ऐसे परिवार का दुखदर्द दिखलाया गया है जो गरीबी के कारण नितान्त पीडा झेलता है। स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेनेवाले शेखर पणिक्कर और पत्नी भवानी की तबीयत भी अच्छी नहीं और वे गरीब भी है। उनकी बेटी को माँ-बाप की भूख मिटाने केलिए अपना शरीर बेचना पडा। साज की हीनावृष्टि से वह बच नहीं पायी। आखिर अपनी इज्जत की रक्षा केलिए उसे खुनी बनना पडा।

सत्य और नीति को धन से नापनेवाले समाज में भी कुछ निष्ठावान एवं सत्यव्रत व्यक्ति होते है। राजशेखरन सत्य पर अटल रहनेवाला आन्टी करप्शन अफसर है, जिस पर रिखत लेने का झूठा हलज़ाम लगाके नौकरी से निकलवाता है खूनी अम्मु की असलियत जानकर राजशेखरन उसको बचाना चाहता है। उसके घर आकर पणिक्कर के आदर्शों से वह प्रभावित भी हो जाता है। पणिक्कर मानता है समाज की नींव घोखेबाज़ी पर निर्भर है।

भूख से बूरी तरह आहत पागल भवानी मानती है कि रोटी ही मनुष्य की सबसे पहली बुनियादी ज़रूरत है। जब राजशेखरन की माँ वहाँ पहुँचती है तो मालूम पडता है कि पणिक्कर राजशेखरन के पिता है। अपने पिता और बहन की रक्षा केलिए वह अम्मु से हुई खून के सभी सबूत मिटाता है और अपने अधिकार का क्रोसबेल्ट तोडने का निश्चय लेता है।

इस नाटक में नाटककार इस तथ्य की ओर इशारा करते है कि आद्मी परिस्थितियों का शिकार है। बेरह परिवेश में जीनेवाले व्यक्ति के मन की सारी कोमलता धीरे धीरे रूख जाती है। आर्थिक तंगी मानव मन की कोमल भावनाओं को नीरस बना देती है और आद्मी निष्ठूर बन जाता है। वह स्वार्थपरता का लोभी होकर किसी भी हीन कार्य करने से हिचकता नहीं। मूल्य और व्यक्ति संबन्धों की परवाह भी वह नहीं करता।

अपने कुकर्मों के परिणाम स्वरूप पतन के गर्त में पडनेवाला काट्टुंगल करिया और गरीबी से तडपनेवाले उसके परिवार की कहानी नाटक में प्रस्तुत है। उसकी बेटी जस्सी ज़िन्दगी के कटु अनुभवों को झेलते झेलते नारी सहज सभी भावनाओं से वंचित रह जाती है। वह किसी न किसी प्रकार धन कमाना

चाहती है और प्रेम जैसी कोमल भावनाओं से वह घृणा भी करती है। करिया भी अपनी बुरी हालत से बचना चाहता है। अतः वे उनके घर आनेवाले अमीर युवक की हत्या करके उसका धन हासिल करने का षड्यन्त्र रचते है। जस्सी खुद उसकी हत्या करती है।

करिया को पता चल जाता है कि वह युवक अपना लापता पुत्र जयिंस है। धन के लोभ के कारण जस्सी को अपने भाई की हत्या करनी पडी। किन्तु उसे तनिक भी दुःख नहीं, क्योंकि वह जानता है कि इसका दायित्व जयिंस का ही है। चाहे तो वह अपने परिवार को गरीबी से बचा सकता था। जयिंस ने सिर्फ अपना सुख चाहा। जस्सी अपने परिवार को मूर्खता का प्रतीक मानती है, और वह पुलीस के हवाले जाने को तैयार हो जाती है।

तीसरा अध्याय

हिन्दी और मलयालम के समस्या नाटकों में अभिव्यक्त समस्याओं की प्रकृति - एक तुलनात्मक अध्ययन

अध्याय ३

हिन्दी और मलयालम के समस्या नाटकों में अभिव्यक्त समस्याओं की प्रकृति - एक तुलनात्मक अध्ययन

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शती के आरंभ में औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप यूरोपीय समाज और जीवन में गहरा परिवर्तन हुआ। वैज्ञानिक विकास तथा नवीन बौद्धिक क्रान्ति के फलस्वरूप साहित्य में भी नई चेतना जागृत हो गई। भारतीय नाट्य साहित्य भी विश्व की इस नवीन चेतना से प्रभावित रहा। समस्या नाटक नाम की नयी नाट्यधारा ने भारतीय नाट्यकला को एक नया मोड देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। हिन्दी और मलयालम के समस्या नाटककारों ने वर्तमान जीवन की कुछ प्रमुख समस्याओं को अपने नाटकों के ज़रिए उभारने की कोशिश की। ये समस्याएँ ज़िन्दगी के भिन्न पहलुओं से जुडे है। नाटक की घटनाएँ और विषय अलग अलग जीवन खण्डों से जुडने के बावजूद उनका मूल लक्ष्य सामाजिक जीवन में व्याप्त विसंगतियों और विद्रूपताओं का पर्दाफाश करना है।

हिन्दी और मलयालम के समस्या नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर सर्वप्रथम यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि - दोनों

भाषाओं के नाटककारों ने दिन प्रतिदिन बढती हुई पारिवारिक समस्याओं का गहराई से अध्ययन किये हैं।

परिवार समाज की सबसे छोटी एवं महत्वपूर्ण इकाई है। आदमी के रागात्मक संबन्धों का आरंभ और विकास परिवार में ही होते हैं। सन्तुष्ट परिवारिक जीवन आदमी का सपना है। उसने परिवार को अपनी सुरक्षा हेतु बनाया है। समाज और परिवार का अटूट संबन्ध है, अतः परिवार सामाजिक सुरक्षा के लिए व्यक्ति पर बनाया गया ढांचा है। "एक व्यक्ति का परिवार और समाज से अलग कोई अस्तित्व नहीं हो सकता।"[१] विभिन्न चरित्रवाले व्यक्तियों के आपसी सहयोग और उनके समझौते में परिवार की नींव डाली गयी है। प्यार और ममता परिवारिक रिश्तों को मज़बूत बनाते हैं। परिवार की भलाई केलिए व्यक्ति को अपनी निजी अभिलाषाओं और स्वार्थों का त्याग करना ही चाहिए।

आधुनिक जगत में भारतीय परिवार विघटन की ओर बढने लगा है। परिवारों का पहले वाला स्वरूप धीरे धीरे बदलने लगा। नयी और पुरानी पीढ़ी के बीच संघर्ष उत्पन्न हुआ। नयी पीढी आँखें मुँदकर परंपरागत नैतिक मान्यताओं को स्वीकार करने केलिए तैयार नहीं थी, और वे स्वतंत्र चिन्तन के पक्षधर बन गयी। समाज के सभी क्षोत्रों में प्रचलित नवीन क्रान्ति ने पारिवारिक जीवन को भी प्रभावित किया। औद्योगीकरण

---

१. भाषा साहिती अप्रैल - जून १९८३

तथा व्यावसायिक प्रगति के युग में सम्मिलित परिवार का महत्व कम होने लगा। वैयक्तिक स्वतंत्रता के मोह के कारण परिवारिक संबन्धों में दरारें पडने लगी। भारतीय पारिवारिक परिप्रेक्ष्य के इन दरारों को समस्यानाटककारों ने अपने नाटकों में स्थान किया है।

आधुनिक यान्त्रिक सभ्यता में, आर्थिक लाभ के लोभ में पारिवारगत प्यार, ममता, सेवा श्रद्धा जैसी विशेषताएँ धीरे धीरे गायब हो जाती हैं और पारिवारिक मान्यताएँ खोखली सिद्ध होती जा रही है। अर्थ की होड में सबसे आगे बढ़ जाने की मनोवृत्ति ने मनुष्य को एक यन्त्र का रूप दे दिया। अधिकाधिक धनोपार्जन कर सुख सुविधाओं को जुटा लेने के लक्ष्य में भटकानेवाले व्यक्ति केलिए पारिवारिक रिश्ते नगण्य है। ऐसे टूटते पारिवारिक परिवेश, जीवन व्यापी घुटन और तनावपूर्ण संबन्धों का बखूबी चित्रण करते हुए हिन्दी और मलयालम के समस्या नाटककारों ने इस असलियत का दिगदर्शन कराया है कि आदमी की आर्थिक हैसियत की तुला पर रिश्ते भी तौल जाते है।

हिन्दी में 'छठा बेटा' (उपेन्द्रनाथ अश्क) में पिता पुत्रों के रिश्ते के सतहीपन, और खोखलेपन का बखूबी चित्रण हुआ है। मलयालम में 'चिनगारी' (तिक्कोडियन) में ऐसा धन लोभी स्वार्थी पुत्र प्रभाकरन से हमारा परिचय कराया गया है जिसके लिए खूनी रिश्तों से बढ़कर अपने निजी जीवन की शान शैकत एवं सुख सुविधाएँ काफी महत्वपूर्ण है। 'एक परिवार' (तिक्कोडियन) नाटक में भी स्वार्थ लाभ केलिए दूसरों

को पीडा पहुँचाकर पारिवारिक माहौल को उजाडनेवाले व्यक्तियों को प्रस्तुत किया है। 'दूध न देनेवाली गाय' (के.टी. मुहम्मद) की समस्या भी आर्थिक लोभ से उपजी है। आदमी और पशु की तुलना में पशु को श्रेष्ठ माननेवाला समाज मानवीय मूल्यों को नकारता है। वित्तीय सभ्यता को तरजीह देनेवाले समाज में आर्थिक दृष्टि से हीन लोगों का कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाता।

कामकाजी बेटी को दुधारू गाय मानकर उससे ज़िन्दगी भर कुँआरी रहने की अपेक्षा रखनेवाले माँ बाप की मनोवृत्ति के मूल में आर्थिक लालच छिपा हुआ है। एन. कृष्णपिल्लै ने 'कन्यका' नाटक में इस जलते सत्य की ओर इशारा किया है। 'अलग अलग' रास्ते (अश्क) में दहेज का मोही होने के कारण पत्नी का त्याग करनेवाला त्रिलोक आधुनिक विलीय सभ्यता का प्रतीक है जो दांपत्य से अधिक महत्व धन को देता है। 'दुविधा' (पृथ्वीनाथ शर्मा) में भी पुरुष के आर्थिक लोभ की शिकार बनी परिव्यक्ता पत्नी की व्यथा गूँजती है। 'घाटे का सौदा' (सी.एन. श्रीकण्ठननायर) पुरुष के स्वार्थ के कारण उलझनेवाले दांपत्य का चित्र दिखाता है। 'राजयोग' (मिश्र) में भी धन और शामन के बल पर नारी को दासी बनानेवाली वृत्ति की ओर संकेत हुआ है।

गरीबी और अभावग्रस्तता में जूझते जूझते उजडनेवाले परिवारों की करुण ज़िन्दगी का चित्रण मलयालम समस्या नाटककारों ने बखूबी ढंग से किये हैं। 'पूँजी' (एन. कृष्णपिल्लै), 'घाटे का सौदा', 'वह फल

मत खाओ' (सि.एन) 'कांच का बर्तन', 'बली' (के. सुरेन्द्र) 'ज़िन्दगी' (तिक्कोडियन) 'डाम' (एन.एन. पिल्लै) आदि नाटकों में इस प्रकार का चित्रण मिलते हैं। गरीबी के कारण वेश्या बन जाने केलिए विवश नारी के दर्द को भी समस्या नाटककारों ने उभारा है। जिस समाज की कुटनीति के कारण उसको वेश्या बनना पडा वही समाज उसका अपमान करता है। 'राक्षस का मन्दिर' (मिश्र), 'फूलवाली' (टि.एन. गोपिनाथन नायर) 'कापालिका', 'क्रोसबेल्ट' (एन.एन. पिल्लै) में आर्थिक तंगी के कारण अपनी ज़िन्दगी बरबाद करनेवाली नारी का रूप देख सकते हैं। एन.एन. पिल्लै ने व्यंग्य किया है कि समाज के सारे अत्याचारों का मूलभूत कारण धन है और वह धन तो धोखेबाज़ी का प्रतीक है।

आर्थिक सभ्यता ने कला को भी बिक्री का माल बना दिया है। 'परिवर्तन' (टि.एन. गोपिनाथननायर) नाटक में कला के प्रति व्यावसायिक रूख रखनेवाली आधुनिक सभ्यता की ओर प्रकाश डाला है। आर्थिक कारणों से उत्पन्न परिवारिक समस्याओं के चित्रण में मलयालम समस्या नाटककार सफल निकले हैं। उन्होंने निम्न मध्यवर्गीय ज़िन्दगी को नज़दीख से देखने-परखने का प्रयास किया जबकि हिन्दी समस्या नाटककारों का ध्यान अभिजात मध्यवर्ग पर केन्द्रित रहा।

पीढ़ी संघर्ष से उपजी समस्याएँ

हिन्दी और मलयालम के नाटककारों ने इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि नई पीढ़ी चाहे वह पुरुष हो या स्त्री परंपरागत मान्यताओं

का बन्धन स्वीकार करना नहीं चाहती। वैज्ञानिक उपलब्धियाँ, पश्चिमी सभ्यता, दर्शन, रहन-सहन के प्रभाव से धीरे धीरे उनकी जीवन दृष्टि में बदलाव आने लगा। ज़मीन्दारी प्रथा के नष्ट होने पर भी ज़मीन्दार की शान शौकत और अधिकारों की आशा रखनेवाले एवं खानदान के अतीत गौरव पर गर्व करनेवाले व्यक्तियों के ज़रिए समस्या नाटककारों ने पारिवारिक समस्याओं का चित्रण किये हैं। 'नया समाज' (उदयशंकर भट्ट) 'नये हाथ' (विनोद रस्तोगी) 'अलग-अलग रास्ते' (अश्क) 'परिवर्तन' (टि.एन. गोपिनाथननायर) आदि नाटकों में नई पुरानी पीढ़ी के बीच का द्वन्द की प्रस्तुति हुई है। इस चित्रण में दोनों भाषाओं के नाटककार सफल निकले हैं।

नारी चेतना की जागृति और उससे उपजी समस्याएँ

आधुनिक युग में नारी चेतना में आये परिवर्तन को दोनों नाटककारों ने अपने नाटकों में उभारा है। आधुनिक शिक्षित नारी स्वतंत्रता के मोही होने के कारण पुरुष पर निर्भर न होकर स्वावलंबी बनता चाहती है। व्यक्ति चेतना के स्वच्छन्द चिन्तन के अन्तर्गत इच्छित साथी प्राप्त करने की तमन्ना भी नारी में बढने लगी। आजीविका के साधन स्वयं जुटा पानेवाली नारियाँ स्वतंत्र जीवन में आस्था रखने लगी। नारी स्वतंत्रता आन्दोलन और यौन मनोविज्ञान की प्रगति के संघात से वैवाहिक मर्यादाएँ बदलने लगी है। नारी, शादी के रूढ़िवादी दृष्टिकोण के प्रति विद्रोह व्यक्त करने लगी। इसके फलस्वरूप परिवारिक एवं सामाजिक जीवन में विघटन उत्पन्न होने लगा।

समस्या नाटककारों ने दांपत्य जीवन में लक्षित ढोंग, असन्तोष, विच्छेद, आत्महत्या एवं क्रान्ति का चित्रण किया है। आधुनिक बुद्धिवादी युवती पति की दासी या उसके भोग विलास की सामग्री बनकर आत्मसमर्पण करने के प्राचीन भारतीय आदर्श से विद्रोह करने लगी। वे अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाया रखना चाहती है। सामाजिक मर्यादा के नाम पर अनमेल दांपत्य जीवन बिताने को वे विवश नहीं होती। आधुनिक नारी के इस विद्रोह के स्वर को समस्या नाटकारों ने उभारा। विद्रोह करने में असमर्थ पीडित नारी की सिसक भी समस्या नाटकों में गुँजती है।

अनमेल विवाह, असफल प्रेम, अतृप्त कामवासना आदि पर आधारित समस्याओं को उभारने में समस्या नाटककार सफल हुए है। लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'सन्यासी', 'मुक्ति का रहस्य', 'आधिरात', 'राजयोग', 'सिन्दूर की होली', और 'राक्षस का मन्दिर' आदि नाटक प्रेम और विवाह के भिन्न पहलुओं से जुडी समस्याओं का उद्‌घाटन करते हैं। 'कैद', 'भँवर', 'उडान' (उपेन्द्रनाथ अश्क) आदि नाटकों में दांपत्य जीवन की घुटन और यौन कुंठाओं का, मनोवैज्ञानिक घरातल पर विवेचन किया गया है। "अश्क स्वतंत्रता पूर्व के पहले नाटककार है जिन्होंने हिन्दी नाटक को रोमांस के कठघरे से निकाल कर आधुनिक भावबोध से जोडा है।"१ उन्होंने 'स्वर्ग की झलक' और 'अलग अलग रास्ते' नाटकों में आधुनिक शिक्षा के प्रभाव के कारण मध्यवर्गीय जीवन में व्याप्त वैवाहिक विषमताओं

---

१. हिन्दी नाटक प्राकथन और दिशाएँ, डॉ. विजयकांत धरदूबे - पृ. ५१

को व्यक्त किया है। इन्हीं समस्याओं को उभारनेवाले अन्य नाटक हैं, 'दुविधा' और 'साध' (पृथ्वीनाथ शर्मा)। सामाजिक परिवेश और रूढ़ियों के कारण, उत्पन्न वैवाहिक समस्याओं का चित्रण 'नये हाथ' (विनोद रस्तोगी) और 'रोटी और बेटी' (रमेश मेहता) नाटकों में हुआ है।

असफल प्रेम, अनमेल विवाह और असन्तुष्ट दांपत्य जीवन आदि के शिकार बने पात्रों के माध्यम से आदमी की चारित्रिक कमज़ोरियों को व्यक्त करनेवाले मलयालम नाटक है 'उजडा घर', 'समझौता', 'पूंजी', 'घडे का दिया', 'मरीचिका' (एन. कृष्णपिल्लै)। विधवा की दमित कामवासना की प्रतिक्रिया से उपजी समस्याओं का उद्‌घाटन बलपरीक्षा (एन. कृष्णपिल्लै) वह फल मत खाओं (सि.एन. श्रीकण्ठननायर) बेप्रसूतमाँ (तिक्कोडियन्) 'कांच का बर्तन' (के. सुरेन्द्रन) आदि नाटकों में हुआ है। 'बलि' (के. सुरेन्द्रन) नाटक प्रेम और कर्तव्य के बीच के द्वन्द को प्रस्तुत करता है।

सास-बहू के बीच का संघर्ष सदियों पुराना है। सास-बहू के ऊपर अपना अधिकार जमाना चाहती है। और यही अपेक्षा रखती है कि वह घर की यंत्रणाएँ चुपचाप सह ले। लेकिन आधुनिक व्यक्तिवादी चेतना के उदित होने के फलस्वरूप नारी का दृष्टिकोण बदला। बहु-सास के संघर्ष को लेकर मलयालम में एक समस्या नाटक निकला 'बलपरीक्षा' (एन. कृष्णपिल्लै)। ऐसे पारिवारिक उलझनों की ओर हिन्दी नाटककारों की दृष्टि नहीं पडी हैं।

परिस्थितियों के दबाव और व्यक्ति की प्रतिक्रिया

समय और परिस्थिति व्यक्ति की चारित्रिक विशेषताओं का कारण बनते है। परिस्थितियों के हावी होते व्यक्ति को कभी कभी इच्छाओं को दवाना पडता है। इस दबाव के कारण उसकी मानसिकता में कुछ बदलाव भी ज़रूर आ जाता है। बदलती मानसिकता के प्रेरणा स्वरूप जीवन के हर क्षेत्र में विडंबनाएं उत्पन्न हो जाती हैं। समस्या नाटककारों ने मनोवैज्ञानिक धरातल पर इन्हीं विडंबनाओं को उभारा हैं।

उपेन्द्रनाथ अश्क के विख्यात नाटक 'अंजो दीदी' में मनोग्रन्थी की शिकार बनी अंजली नामक औरत की ज़िन्दगी का चित्रण हुआ है। समय की पाबन्दी रखने की हठ करनेवाली अंजली अपने परिवार को अपनी आज्ञा के अनुसार संभालती है। उसके पति और पुत्र उसके शासन में अपना अस्तित्व खो बैठते है। आखिर जब उसके पति उसकी आज्ञाओं का पालन करने में असमर्थ बनता है तो अंजली आत्महत्या करती है। किन्तु उसकी आत्मा उस घर में हावी हो जाती है और अंजली की बहु उसकी तरह सनक प्रकट करती है। "मशीनीकरण के कारण डूटते हुए व्यक्तित्व आधुनिक जीवन का अत्यन्त खतरनाक रोग है।"[१] ऐसी मनोवैज्ञानिक समस्या की ओर मलयालम नाटककारों का ध्यान न गया है।

---

१. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, बच्चन सिंह - पृ. ३४५

अपराधबोध से आहत व्यक्तियों की समस्याओं को उभारने बाले नाटक है 'सिन्दूर की होली', 'राजयोग' (लक्ष्मीनारायण मिश्र) 'नयासमाज' (भट्ट) 'घटे का दिया' (एन. कृष्णपिल्लै) आदि। असफल प्रेम और अतृप्त कामवासना की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न प्रतिहिंसा ग्रंथी के शिकार बने पात्र की ज़िन्दगी का तीखा चित्रण तिक्कोडियन ने 'बेप्रसूत माँ' में किया है।

द्वेव की ज्वाला में झुलसे दिलों की पीडा को समस्या नाटककारों ने पहचान लिया। 'टूटी हुई कडी' (तिक्कोडियन) 'डाम' (एन.एन. पिल्लै) इस प्रकार के नाटक हैं। अकेलेपन का दुःख और मानवीय मूल्यों का ह्रास इन नाटकों में व्यक्त हुए है। हिन्दी नाटककारों ने इस की ओर ध्यान नहीं दिया है।

मलयालम में के.टी. मुहम्मद के नाटक 'काफर' और 'यह धरती है' नाटकों में सामाजिकता की जो ज़ोरदार आवास गूँजती है, वह हिन्दी के किसी भी नाटक में प्राप्त नहीं। मुसलमान समाज की रूढ़ियों और झूठी मर्यादाओं का पर्दाफाश करनेवाले ये नाटक मलयालम नाटक साहित्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। 'रोटी और बेटी' (रमेश मेहता) में धार्मिक रुढ़ियाँ और जाति पाँति के भेद-भाव के प्रति विद्रोह का स्वर गूँजता है।

सामाजिक कुरितियों, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी आदि पर तीखे व्यंग्य के ज़रिए चोट करनेवाले नाटककार है एन.एन. पिल्लै। 'कापालिका',

क्रोसबेलट जैसे नाटकों को उन्होंने सामाजिक विद्रूपताओं पर तीखे प्रहार करने का अस्त्र बनाया। हमारे विघटित होते समाज में झूठ, अन्याय कानून व्यवस्था, दृष्टाचार आदि के विरुद्ध लडनेवाले व्यक्ति की लडाई और टूटन को व्यक्त करने में एन.एन. पिल्लै को जितनी सफलता मिली उतनी किसी हिन्दी समस्या नाटककार को नहीं मिली।

राजनीतिक समस्याएँ

हिन्दी समस्या नाटकों में असहयोग आन्दोलन के बाद विकसित हुए राजनीतिक संघर्षों एवं समस्याओं की प्रस्तुति हुई। अंग्रेज़ी शासकों के अत्याचारों के विरुद्ध हमारी राष्ट्रीय नेताओं की सात्विक राजनीति का आन्दोलन चलने लगा था। अंग्रेज़ी शासन को कायम रखने में प्रयत्नसील नौकरशाही की जडें भी काफी गहरी थी। साहित्यकार कभी भी तत्कालीन राष्ट्रीय परिस्थितियों से प्रतिक्रिया हीन रह नहीं सकते। राजनीतिक संघर्षों और समस्याओं पर समस्या नाटककारों ने ध्यान दिया और राष्ट्रीय भावना को जागृत करने में सफल प्रयास भी किया।

हिन्दी में लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविन्ददास आदि के नाटकों में समसामयिक राजनीतिक समस्याओं को प्रमुखता दी गयी है। मिश्रजी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में कर्मरत पात्र की सृष्टि करके उनके माध्यम से तत्कालीन राजनीतिक गतिविधियों का चित्रण किया। 'सन्यासी' में विश्वकान्त और मुरलीधर को कारावास मिलता है। विश्वकान्त भी अंग्रेज़ी शासन की कूटनीतियों का खण्डन करने केलिए लेख लिखता है। नाटककार

ने केवल भारत की ही नहीं अन्य एशीयायी देशों की गुलामी पर प्रकाश डाला है। विश्वकांत के ज़रिए एशियायी संघ की स्थापना के बारे में भी नाटक में उल्लेख है।

'मुक्ति का रहस्य' नाटक में वर्तमान चुनाव नीति की बिडंबना और स्वार्थवश उपयुक्त उम्मीदवार का विरोध करनेवाली अप्रजातंत्रीय शक्तियों का चित्रण हुआ है। उमाशंकर गाँधीवादी विचारधारा के समर्थक है और वह चुनाव जीतने केलिए कोई षडयन्त्र नहीं रचता। वह अपने मित्रों को कहता है की वह उनके स्वार्थ की पूर्ति न करे। इस वक्त उसका अन्तरंग मित्र भी पाँच सौ रुपये लेकर अपना वोट बेचता है। राजनीतिक प्रतिष्ठा और अधिकार को स्वार्थलाभ केलिए उपयोग करनेवालों के विरुद्ध नाटककार ने आवाज़ उठायी है।

सेठ गोविन्ददास के नाटकों का मूलस्वर राजनीति का है। प्रकाश में पूँजीपति और उद्योगपतियों की धोखेबाजी का चित्रण है। उन्होंने राजनीति को अपने स्वार्थ का माध्यम बनाया है और जनता से बेइमानी की। सेवा-पथ नाटक में समाज सेवा के अलग अलग रास्ते में से, गाँधीवाद का महत्व स्थापित किया गया है। इस नाटक में भी वर्तमान राजनीति की स्पष्ट झलक मिलती है। 'सिद्धान्त स्वातन्त्र्य' में उन राजनीतिज्ञों के खोखलेपन की ओर संकेत किया है जो जवानी के नशे में क्रान्तिकारी विचारधारा के प्रचारक बनते हैं, और समाज में प्रतिष्ठा पाने पर स्वार्थी एवं कपटी बन जाते हैं।

मलयालम समस्या नाटकों में राजनीतिक समस्याओं पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविन्ददास जैसे हिन्दी समस्या नाटककार राष्ट्रीय विचारधारा के प्रबल समर्थक थे। राष्ट्रीय आन्दोलन के सिलसिले में वे गिरफतार भी किये गये हैं, और जेल भी गए हैं। स्वतंत्रता आन्दोलन की लहरों ने सुदूर दक्षिण के नाटककारों को उतनी मात्रा में विचलित न किया था। अतः स्वतंत्रता आन्दोलन का जो प्रभाव हिन्दी समस्या नाटककारों पर पडा है, उतना मलयालम के नाटककारो पर नहीं।

पारिवारिक, सामाजिक, आर्थक, राजनीतिक और मनौवैज्ञानिक सस्याओं का तार्किक एवं समीचीन विवेचन करनेवाले समस्या नाटको का नाटच साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। युगानुकूल परिवर्तनों के संघात से व्यक्तिजीवन के हर पहलु मैं होनेवाली सभी समस्याओं को उभारने का प्रयास समस्या नाटककारों ने किया।

चौथा अध्याय

हिन्दी और मलयालम के समस्या नाटकों का शिल्पविधान - तुलनात्मक अध्ययन

अध्याय ४

हिन्दी और मलयालम के समस्या नाटकों का शिल्पविधान - तुलनात्मक अध्ययन

नाटक सर्वश्रेष्ठ दृश्य काव्य है। इसकी कुछ अनिवार्य विशेषताएँ है। कथावस्तु, पात्र, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, रंगमंच आदि नाटक की महत्वपूर्ण इकाइयाँ है और इनके समन्वय में ही नाटक की सफलता निर्भर है। गोविन्द चातक का यह कथन यहाँ विचारणीय है 'नाटक का स्वरूप उसके विभिन्न घटकों और उनके संबन्धों पर निर्भर करता है।'[१]

हिन्दी और मलयालम के प्रारंभिक नाट्य साहित्य ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथानकों के आधार पर विकसित था। हिन्दी में भारतेन्दु और प्रसाद युग के नाटककार किसी उदात्त नायक और उनकी वीरगथाओं का वर्णन प्रस्तुत करते थे। मलयालम में संगीत नाटकों और प्रहसनों का बोलबाला था। रूढ़ियुक्त एवं कृत्रिम शैली के नाटकों की सृष्टि प्रायः दोनों भाषाओं में हुई। कथानक शिथिल होते थे और अंकों की संख्या अधिक थी। पात्र और चरित्रसृष्टि में रुढिगत विचारों का पालन हुआ

---

१. नाटक की साहित्यिक संरचना, गोविन्द चातक - पृ. ३१

था। इन सबके उतिरिक्त पुराने नाटकों की मंचीयता भी असंभव सा लगता था।

उन्नीसवीं शति के उत्तरार्थ और बीसवीं शती के आरंभ में औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम स्वरूप यूरोपीय समाज और जीवन में गहरा परिवर्तन हुआ। डारविन के विकासवाद, मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और फ्रायड के आदर्शों का प्रभाव भी समाज में पडा। इन सबके फलस्वरूप एक नयी चेतना की जाग्रति हुई जिसके कारण बौद्धिक क्रान्ति की लहरें उठने लगी। भारतीय नाट्य साहित्य भी विश्व की इस नवीन चेतना या वैचारिक आन्दोलन से प्रभवित हुए। 'यहाँ भी पश्चिम के समान समस्या नाटकों की अवधारणा, कलावाद और सौन्दर्यवाद अथवा भावुकता और रोमांस की प्रतिक्रिया से हुई।'[१] यूरोप में बुद्धिवादी नाटककार शेक्सपियर की नाट्यशैली के प्रति अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करने लगे। हिन्दी में बुद्धिवादियों का लक्ष्य प्रसाद थे। मलयालम में भी प्रचलित संगीत नाटक शैली और प्रहसनों के विरद्ध प्रतिक्रियाएँ हुई।

समस्या नाटककारों ने ज़िन्दगी की यथार्थता पर बल दिया। उन्होंने वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन का वास्तविक चित्रण किया। परंपरावादी तथा प्रगतिवादी मूल्यों के द्वन्द और उससे उपजी समस्याएँ समस्या नाटककारों का विषय बना। समस्या नाटकों की इस नयी

---

१. भारतीय भाषाओं के नाट्य साहित्य शान्ति मलिक - पृ. २७

जीवन दृष्टि के कारण इनकी कुछ मौलिक विशेषताएं है जो नाटक के समस्त तत्त्वों में विद्यमान है।

आगे हम समस्या नाटकों शिल्पगत अध्ययन एवं तुलना करें।

वस्तुयोजना

नवीन बौद्धिक एवं मनोवैज्ञानिक विचारधारा के संघात से ज़िन्दगी की परिस्थितियाँ बदल गयी हैं। आधुनिक नाटककार की दृष्टि अतीत के बदले वर्तमान के यथार्थ पर केन्द्रित हुई। इसी बदलते दृष्टिकोण के कारण समस्या नाटक के कथानक में एक नया रूप उभरने लगा है।

हिन्दी के प्रमुख समस्या नाटककार मिश्रजी की राय में उसका कथानक ख्यात इतिवृत्तप्रधान अथवा काल्पनिक न होकर दैनंदिन जीवन की यथार्थ स्थितियों पर अवलंबित होता है।[१] समस्या नाटकों का केन्द्र मध्यवर्गीय जीवन परिवेश है। समसामयिक सामाजिक एवं परिवारिक जीवन में प्रेम, विवाह, जाति, अर्थ, राजनीति, धर्म, आदि की प्रचलित मान्यताओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन आने लगे। इनसे उपजी समस्याओं को सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से परखने का प्रयत्न समस्या नाटककारों ने किया।

समस्या नाटककार ज़िन्दगी की ज्वलन्त समस्याओं पर विचार करते है। नित्यप्रति के जीवन की विघटित स्थितियों का विश्लेषण

---

१. मुक्ति का रहस्य की भूमिका, लक्ष्मी नारायण मिश्र

करके, किसी एक समस्या विशेष का प्रतिपादन करना समस्या नाटककार का लक्ष्य रहा। समस्या का विचार विमर्श कथानक के विकास के ज़रिए होता है।

समस्या नाटक के कथानक की शुरुआत में परंपरा से विद्रोह करनेवाले एक क्रान्तिकारी पात्र की प्रस्तुति होती है। बिगडी हुई सामाजिक परिस्थितियों और इस पात्र के बीच का संघर्ष और उसकी विवशता कथानक में प्रमुख है। कथा के प्रारंभ में समस्या के मूल स्वरूप का संकेत करने के बाद नाटककार कथा की विकासगति में उस समस्या के मूल कारणों पर प्रकाश डालते है। पात्रों के द्वारा समस्या का विचार विमर्श होते है। वहाँ परंपरावादी एवं अप्रासंगिक मूल्यों और प्रगतिवादी तथा युग सापेक्ष मूल्यों के बीच टकराहट होती है।

हिन्दी के समस्या नाटककारों ने समस्याओं का उद्‌घाटन करने के लिए वर्तमान जीवन को माध्यम बनाया। प्रमुख नाटककारों ने वस्तु चयन के संबन्ध में अपनी राय व्यक्त की है। लक्षमीनारायण मिश्रजी ने लिखा है - 'मैं ने कुछ अनुभव लिखा है, देखा है, उसे नाटक के रूप में तुम्हारे सामने रख देता हूँ, यथार्थ ज्यों का त्यों ईमानदारी के साथ।'[१] इसके अलावा सेठ गोविन्ददास और अश्क ने भी सम सामयिक समस्याओं को प्रमुखता देने की आवश्यकता पर बल दिया है।

---

१. सन्यासी, लक्ष्मीनारायण मिश्र - पृ. ५

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने प्रसाद की भावुकता का विरोध तो किया। मगर उनके कथानक भी भावुकता से मुक्त नहीं। 'सिन्दूर की होली', 'मुक्ति का रहस्य' आदि नाटक भावुकता के घेरे में वास्तविकता का असफल दावा करते है। सेठ गोविन्ददास के कथानक भी यथार्थ से दूर है। उनके नाटकों में संघर्ष के मौके कम है। उन्होंने गाँधीवादी विचारधारा से समाधान ढूँढनेवाली समस्याओं की सृष्टि की। उपेन्द्रनाथ अश्क ने तो समस्याओं का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया। किन्तु उनके कथानक का केन्द्र अभिजात एवं मध्यवर्गीय समाज है। उदयशंकर भट्ट, पृथ्वीनाथ शर्मा, विनोद रस्तोगी और रमेश मेहता ने भी प्रतिपाद्य समस्या और अभीष्ट सन्देश के अनुरूप घटनाओं और स्थितियों की अवधारणा करके कथानक का विन्यास किया है।

मलयालम समस्या नाटकों में कथावस्तु के रूप में ज़िन्दगी का यथार्थ चित्रण होता है। सभी नाटककारों ने आधुनिक मानव की विडंबनाओं का चित्रण किया। समाजिक मूल्यों का विघटन, आर्थिक समस्या, मनोविज्ञान आदि विभिन्न आधारों पर कथावस्तु का निर्माण हुआ है। एन. कृष्णपिल्लै ने पारिवारिक समस्याओं को प्रमुखता दी। तिक्कोडियन ने मध्यवर्गीय जीवन परिवेशों को आधार बनाया।

मलयालम समस्या नाटकों की अपेक्षा हिन्दी समस्या नाटकों में कथा की एकसूत्रता का अभाव है। अनेक समस्याओं की प्रस्तुति एक साथ करने के कारण कथानक उलझ जाते हैं। प्रेम, विवाह, वैधव्य,

रिश्वतखोरी, आदि अनेक समस्याएँ एक साथ हुई है। मलयालम समस्या नाटकों में प्रायः एक नाटक में एक ही समस्या का विश्लेषण होता है। अतः कथानक शिथिल नहीं है। मिश्र और अश्क के अलावा अन्य हिन्दी समस्या नाटककारों के कथानक में तार्किक विश्लेषण नहीं है। मिस्राजी की तार्किकता तो नीरस भी बन पडी है। मलयालम समस्या नाटककारों का कथानक प्रायः सहज एवं स्वाभाविक लगता है, जबकि हिन्दी के समस्या नाटक अस्वाभाविक एवं अविश्वसनीय लगता है।

दोनों भाषाओं के समस्या नाटकों की वस्तुयोजना में आदर्शवादी नाटकों जैसी पंचसन्धियों, और कार्यावस्थाओं की प्रधानता नहीं। फलप्राप्ति तथा क्रिया व्यापार का महत्व भी उनमें नहीं, संक्षेप में समस्या नाटक की कथावस्तु संश्लिष्ट और संक्षिप्त होती है।

अंक और दृश्य विधान

यथार्थवादी नाट्य शिल्प में अंक और दृश्य विधान विषयक मान्यताएँ प्राचीन शैली से भिन्न होती है। हिन्दी के समस्या नाटकों में अंकों और दृश्यों की संख्या कम होती है। इसका कारण यह है कि कथानक संक्षिप्त एवं साधारण है और उसके प्रेक्षक यथार्थवादी है। रंगमंच पर यवनिका का बारबार उठाना यथार्थवादी रंगमंच की मान्यताओं के विरुद्ध है। प्रायः समस्या नाटकों में तीन अंक होते है। कभी कभी चार या दो अंकों का भी विधान होते है। अंकों के अन्तर्गत दृश्य परिवर्तन भी कम होते है। दृश्य परिवर्तन कृत्रिमता का आभास देता है, अतः समस्या

नाटककार उसको उचित न समझते। हिन्दी समस्या नाटकों की तुलना में मलयालम नाटकों में अंकों की संख्या अधिक है। पाँच और उससे भी अधिक अंकोंवाले है मलयालम के समस्या नाटक। दृश्य परिवर्तन हिन्दी के समान कम ही होते हैं।

चरित्र-चित्रण

नाटक की कथावस्तु की क्रियाशीलता व्यक्त करनेवाले अंग है पात्र। अतएव चरित्र-चित्रण और कथानक के आपसी संबन्ध नाटक की सफलता केलिए अनिवार्य है। वास्तव में पात्र ही कथानक का निर्माण करते हैं।

भारतेन्दु तुग और प्रसाद युग के नाटकों में पात्र ऐतिहासिक थे और चरित्र चित्रण की शैली परंपराओं के आधार पर थी। उनमें तो धीरोदात्त नायत ने गुण प्रस्तुत थे। इनसे भिन्न होकर समस्या नाटकों में सजीव पात्रों की अवधारणा होती है। समस्या नाटकों के प्रयोक्ता इब्सन ने अपने नाटकों में प्राणवन्त पात्रों का निर्माण किया, जिससे जीवन की वास्तविकता व्यक्त हो सके। वे पात्र निजी जीवन के निकट होने के कारण अधिक सहज एवं प्रभावशाली होते है। परिवेश के प्रति क्रिया प्रतिक्रिया व्यक्त करनेवाले पात्र समस्या नाटक में होते है। समस्या नाटककार न समस्याओं को पात्रों पर आरोपित करते है और न पात्रों को विचार वस्तु मानते है। उन्होंने पात्र और परिवेश के आपसी संबन्ध के आधार पर चरित्र-सृष्टि की है।

समस्या नाटक की परिवेशमूलक विशेषता है व्यक्ति स्वतंत्रता के ऊपर परंपरावादी मूल्यों का दबाव। इस परिवेश के प्रति विरोध या अनुकूलता पात्रों के चरित्र का आधार है। समस्या नाटकों में व्यक्ति पात्रों और वर्ग पात्रों की सृष्टि होती है। व्यक्ति पात्र प्रायः परंपरावादी मूल्यों के प्रति विद्रोही होते है। लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'सन्यासी' नाटक में विश्वकान्त, मुरलीधर, मालती और किरणमयी, 'मुक्ति का रहस्य' में आशादेवी और त्रिभुवननाथ, 'सिन्दूर की होली' में मनोरमा आदि इस तरीके के पात्र है। परिस्थितियों और जीवन मूल्यों के प्रति उनकी निजी प्रतिक्रियाएँ होती है। उपेन्द्रनाथ अश्क के 'अंजोदीदी' में श्रीपत 'कैंद' में दिलीप और अप्पी, 'उडान' में माया 'अलग अलग रास्ते' में रानी और पूरन आदि भी व्यक्ति पात्रों के उदाहरण है। उदय शंकर भट्ट का 'कमला नाटक' की कमला, सेठ गोविन्ददास के 'प्रकाश' का प्रकाश, विनोद रस्तोगी के 'नये हाथ' का महेन्द्रपाल और शालिनी आदि पात्रों ने भी परिवेश के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त की है।

वर्गगत पात्र प्रायः रूढ़िवादी होते है। अश्क के 'स्वर्ग की झलक' में भाई साहब, 'अलग-अलग' रास्ते में ताराचन्द, सेठजी का 'सिद्धान्त स्वातंत्र्य' में लाला चतुर्भुजदास, उदयशंकर भट्ट का 'नया समाज' में ज़मीन्दार मनोहर सिंह, 'कमला' का देवनारायण, रमेश मेहता के 'रोटी और बेटी' का सुखलाल, विनोद रस्तोगी के 'नये हाथ' में अजयप्रताप, माधुरी और नवाब यूसुफ रूढ़िवादी पात्र है।

मलयालम समस्या नाटकों में भी व्यक्ति पात्र और वर्गगत पात्रों की कल्पना हुई है। एन. कृष्णपिल्लै के प्रायः सभी नाटकों में परिस्थितियों से संघर्ष करनेवाले या प्रतिक्रिया व्यक्त करनेवाले पात्र है। 'कन्यका' में देवकिक्कुट्टी, 'उजडा घर' में राधा और सुमति 'बन्दरगाह की ओर' में शंकरनकुट्टि, 'बलपरीक्षा' में पंकजम, 'पूँजी' में श्यामला, आदि इसके उदाहरण है। तिक्कोडियन के 'ज़िन्दगी' में राधा और वेणु, 'नयी भूल' में शंकरननायर और मधु, 'चिनगारी' में राघवन, 'बेप्रसूत माँ' में मालिनी आदि पात्र भी अपने परिवेश के प्रति विद्रोह करनेवाले पात्र हैं। 'घाटे का सौदा' (सि. एन. श्रीकण्ठननायर) में शारदा, 'यह धरती है' (के.टी. मुहम्मद) में खालिद, 'काफर' में खादर, सुलेखा और नफीसा, 'दूध न देनेवाली गाय' में पुरुषु 'कापालिका' में रोसम्मा, 'क्रोसबेल्ट' (एन.एन. पिल्लै) में राजशेखरन और अम्मु आदि पात्र भी अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को बनाए रखनेवाले पात्र हैं।

हिन्दी नाटकों की अपेक्षा वर्गगत पात्रों की सृष्टि मलयालम में कम हुई है। एन. कृष्णपिल्लै का 'बन्दरगाह की ओर' में केशवनाशान, के.टी. मुहम्मद का काफर में इब्राहिम कुट्टि हाजी आदि पात्र रूढीवादी पात्र है।

व्यक्ति पात्रों के चरित्र चित्रण में मलयालम नाटक श्रेष्ठ है, क्योंकि उनमें आदर्श का आरोप नहीं हुआ है। हिन्दी समस्या नाटकों के पात्र स्वाभाविक नहीं लगते।

चरित्र चित्रण में मनोवैज्ञानिक अन्वेषण

विकसित होनेवाले मनोवैज्ञानिक अन्वेषणों से मानव चरित्र के कई पहलुओं के प्रति मानव अवगत हो गये है। समस्या नाटकों की चरित्र सृष्टि में इसका प्रभाव हुआ है। मानव में गुण और अवगुण होते है। समस्या नाटककारों ने इस नवीन यथार्थ को स्वीकार किया है। उदयशंकर भट्ट ने 'नया समाज' की भूमिका में बताया है 'मूलतः मनुष्य न बुरा है, न भला... मानस की ग्रन्थियाँ निरन्तर खुलती और बन्धती रहती है। मनुष्य जो कुछ बाहर दिखाई पडता है वहीं, वह नही होता, और भी बहुत कुछ उसमें निहित है।'[१] विचार और चिन्तन के प्रवाह में ह्रदय कभी कभी उच्छ्वसित हो उठता है और उनके मन में भावावेग का स्पन्दन भी उत्पन्न होते है।

सामाजिक परिवारिक बन्धनों में पडी हुई व्यक्ति की आत्माओं की आन्तरिक तडपन, घुटन, विवशता, उदासी आदि ही समस्या नाटक के प्रमुख विषय है। इन आदमियों के चरित्रों में निराशा और कुंठायें अधिक होती है। समस्या नाटककारों ने प्रेम और विवाह के सन्दर्भ में काम समस्याओं को उभारा है, सेक्स को फ्रायड ने स्थूलतः प्रेम और यश अथवा काम और यश माना है। सेक्स मानव का वैयक्तिक प्रश्न है। सामाजिक मर्यादाओं के अनुसार सेक्स की माँग विवाह के साथ यानी दांपत्य जीवन में पूरी होती है। जब किसी भी प्रकार मानव इस जैविक

---

१. नया समाज, उदयशंकर भट्ट - पृ. ८-९

वृत्ति पर प्रतिबद्ध लगाता है तब उसकी वासना दमित हो जाती है और अन्तर्मन में संघर्ष भी हो जाता है। "इसी मानसिक द्वन्द्ववशयता में सेक्स समस्या का प्रादुर्भाव होता है।[१] हिन्दी और मलयालम समस्या नाटककारों ने काम समस्याओं के इसी धरातल पर पात्र सृष्टि की है।

हिन्दी के प्रमुख समस्या नाटककार लक्ष्मी नारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट, पृथ्वीनाथ शर्मा और उपेन्द्रनाथ अश्क के नाटकों में ऐसे पात्रों की सृष्टि हुई है जो एक विचित्र मानसिक स्थिति से गुज़र रहे है और जिन्दगी पर सुस्थिर नहीं हो पाते हैं। अनमेल विवाह, असफल प्रेम, रुढ़ियाँ और सामाजिक मान्यतायें और आदमी के स्वार्थ आदि कारणों से अतृप्त कामवासना के शिकार करनेवाले पात्र इनके नाटकों में पाये जाते हैं। प्रायः सभी पात्र अपनी समस्याओं का समाधान भी ढूँढ निकालते हैं। जो पात्र परिस्थितियों से विद्रोह करने में असमर्थ रहते है उनका जीवन असफल रह जाते हैं। आधुनिक शिक्षा एवं पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव भी कई पात्रों की चारित्रिक कमज़ोरियों का कारण होता है। काम समस्याओं से पीडित पात्र है, मिश्रजी के 'सन्यासी' नाटक के दीनानाथ, किरणमयी, मालती विश्वकान्त रमाशंकर और मुरलीधर, 'मुक्ति का रहस्य' के आशादेवी और त्रिभुवननाथ, 'राक्षस का मन्दिर' के अश्करी और मुनीश्वर, '

---

१. आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, डॉ गणेशदत्त गौड - पृ. १२२

आधिरात' के मायावती और प्रकाश चन्द्र 'सिन्दुर की होली' के मनोरमा चन्द्रकला और मनोजशंकर, राजयोग के चंपा शत्रुसुदन और नरेन्द्र आदि। भट्टजी के पात्र कमला (कमल) कामना (नया समाज) पृथ्विनाथ शर्मा के कुमुद (साध) सुधा (दुविधा) अश्क के अप्पी, प्राणानाथ (केंद) माया, शंकर, मदन (उडान) प्रतिभा (बंवर) आदि पात्र भी विभिन्न कारणों से यौन समस्याओं का सामना करनेवाले है।

मलयालम के प्रमुख समस्यानाटककारों ने भी प्रेम और विवाह के सन्दर्भ में काम समस्या के पीडित पात्रों का चित्रण किया है। एन. कृष्णपिल्लै के शधा जनार्दननायर, हरीन्द्र और सुमती (उजडा हुआ घर) देवकिक्कुट्टि (कन्यका) लक्षियम्मा और पंकजन (बलपरीक्षा), गोमती (समझौता), प्रभाकरन नायर और तंकम्मा (पूँजी) बार्वनियत्मा और गोविन्दपिल्लै (घट्टे का दिया) सुकुमारी रोजनी और पद्मा (बन्दरगाह की ओर) आदि अनमेल विवाह, असफलप्रेम और परिवारिक तथा सामाजिक विडंबनाओं के कारण दमित इच्छाओं से पीडित पात्र है। सि.एन. श्रीकण्ठननायर के सरस्वतियम्मा (वह कल मत खाओ) तिक्कोडियन के मीनाक्षइयम्मा (बेप्रसुतमा) के. सूरेन्द्रन के कमलम्मा और कण्णंकरा (कांच की बर्तन) आदि भी इसी खेमे के हैं।

यौन की प्रखरता, प्रेम-प्रणय और यौन समस्याओं के चित्रण में जो व्यापक परिकल्पना मलयालम नाटकों में है उसका अभाव हिन्दी नाटकों में दीख पडता है। हिन्दी में अश्क को छोडकर अन्य नाटककारों

के पात्रों में भावुकता की अधिकता के कारण सहजता नहीं। वे मलयालम के जैसे जीवन्त पात्र नहीं बनते।

कामवासना के अलावा अन्य प्रकार की मानसिक ग्रन्थि से पीडित पात्रों का चित्रण भी समस्या नाटकों में हुआ है। उपेन्द्रनाथ अश्क के अंजली (अंजो दीदी) मिश्र के गजराज (राजयोग) मुरारीलाल (सिन्दूर की होली) आदि पात्र घुटन और अपराध बोध की भावनाओं में कुंठित है। मलयालम में एन. कृष्णपिल्लै के करिया, जस्सी और जयिंस केशवक्कुरुप्प (उजडा घर) गंगाधरन नायर और मीनाक्षी (मरीचिका) तिक्कोडियन के चात्तुण्णिनायर (टूटी हुई कडी) के.टी. मुहम्मद के पुरुष (दूध न देनेवाली गाय) आदि पात्र विभिन्न प्रकार की मानसिक ग्रन्थियों के शिकार है।

चरित्र चित्रण में संघर्ष तत्व

पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं में मानसिक संघर्ष का महत्वपूर्ण स्थान है। यह अलग अलग तरीके से होते है। व्यक्ति और समाज के बीच के संघर्ष, पारिवारिक संबन्धों में होने वाला संघर्षै कर्तव्य और प्रवृत्ति के बीच का संघर्ष और भलाई-बुराई के बीच का संघर्ष।

सामाजिक मर्यादाओं रूढ़ियों और परंपरागत मान्यताओं के विरुद्ध संघर्ष करनेवाले प्रगतिशील पात्रों की सृष्टि हिन्दी और मलयालम समस्या नाटककारों ने की है। मिश्रजी के किरणामयी (सन्यासी) सेठ गोविन्ददास के प्रकाश (प्रकाश) मनोहर (सिद्धान्त स्वातंत्र्य) अश्क के श्रीपत (अंजो

दीदी) पूरन और रानि (अलग अलग रास्ते) विनोद रस्तोगी के महेन्द्र और शालिनी (नये हाथ) आदि इस प्रकार के पात्र है।

पारिवारिक संबन्धों में होनेवाले संघर्ष का अनुभव करनेवाले पात्र है, अश्क के इन्द्रनारायण और (अंजो दीदी) रघु (स्वर्ग की झलक) पं. वसन्तराज (छठा बेट) आदि। मलयालम में कृष्णपिल्लै के माधवननायर भारती (कन्यका) किट्टुपिल्लै (समझौती), श्यामला (पूँजी), तिक्कोडियन के जानकी और राघवन (चिगारी) भारती, शान्ता और राघवन (एक परिवार) शंकरननायर रघु और शान्ता (नयी भूल) सि.एन. श्रीकण्ठन नायर के राजन (वह फल मत खाओ) शारदा, सुकुमारननायर और अम्मिणी (घाटे का सौदा) टी.एन. के मधुसूदननायर और राघवन (परिवर्तन) के सुरेन्द्र के सति (लांच का बर्तन) आदि परिवारिक संबन्धों में संघवी भोगी पात्र है।

मलयालम नाटककारों ने इस प्रकार के चरित्र चित्रण मलयालम में (एन. कृष्णपिल्लै) 'बंदरगाह की ओर' का शंकरनक्कुट्टि, 'फूलवाली' (टि.एन. गोपिनाथननायर) का अम्मिणी के.टी. मुहम्मद के खालिद (यह धरती है) खादर और सुलेखा (काफर) एन.एन. पिल्लै के रोसम्मा (कापालिका) राजशेखरन नायर, अम्मु और शेखरपणिक्कर (क्रोसबेल्ट) आदि पात्र व्यक्ति और समाज बीच के संघर्ष का प्रतिनिधित्व करनेवाले है।

कर्तव्य और निजी जीवन की संघर्ष झेलनेवाले पात्र भी समस्या नाटकों में मिलते है। मिस्राजी के विश्वकान्त और मुरलीधर (सन्यासी)

उमाशंकर (मुक्ति का रहस्य) सेठ गोविन्ददास का शक्तिपाल (सेवा-पथ) पृथ्वीनाथ शर्मा का विनय (दुविधा) कुमुद (साध) विनोद रस्तोगी का विजय प्रताप (नयेहाथ) आदि गहरे संघर्षों का सामना करनेवाले हैं। मलयालम में कृष्णपिल्लै के केशवनक्कुट्टि (समझौता) श्यामला (पूंजी) पार्वतियम्मा, गोविन्दनप्पिल्लै (घटे का दिया) टी.एन. के पद्मनाभन (फूलवाली) के. सुरेन्द्रन के माधवी और गोविन्दन (बलि) आदि भी कर्तव्य और प्रवृत्ति के बीच दोलायमान होते हैं।

समस्या नाटकों के कुछ पात्र भलाई और बुराई के बीच के संघर्ष से जूझते हुए असत् से सत् की ओर अग्रसर होते है। हिन्दी में मिश्रजी के अश्करी और मुनीश्वर (राक्षस का मन्दिर), मायावती (आधीरात), भट्ट के यज्ञनारायण (कमला), पृथ्वीनाथ शर्मा के कुमुद (साध) जिन्दगी के ऋणात्मक पक्ष से घनात्मक पक्ष की ओर अग्रसर होते है। मलयालम में एन. कृष्णपिल्लै के प्रभाकरन नायर (पूंजी) गंगाधरननायर (मरीचिका) तिक्कोडियन के चात्तुण्णिनायर (टूटी हुई कजी) प्रभाकरन (चिनगारी) नारायणमेनोन (नयी भूल), विश्वनाथन (एक परिवार) आदि अपनी जिन्दगी की गलतियों को पहचानकर, सदवृत्तियों का विकास करने वाले है।

संवाद योजना

समस्या नाटकों में कुछ पात्र नाटक में पात्रों के कथोपकथन के माध्यम से ही नाटक की कथावस्तु प्रस्फुटित होती है और पात्रों की चरित्रगत विशेषताएँ उभारी जाती है। केवल वाक्य रचना संवाद नहीं

है। गोविन्द चमक के मत में 'संवाद ऐसी भाषा है जो स्थिति और सन्दर्भ विशेष में श्रोता-वक्ता की वाचिक अभिव्यक्ति पर निर्भर करती है।'[१] इस वाचिक अभिव्यक्ति से नाटक का क्रमिक विकास संभव है। भारतेन्दु तथा प्रसाद युग के नाटकों में कलात्मक शैली की संवाद योजना बायी जाती है। चेष्टाओं और गतियों के साथ शब्दों के प्रयोग और उच्चारण में अतिरंजना थी। उस ताल की मान्यता यह थी कि प्रत्येक वाक्य स्पष्ट तथा प्रभावोत्पादन ढंग से प्रस्तुत किया जाय।

समस्या नाटककार कलात्मकता को महत्व नहीं देते। संवाद को अतिरंजित करना उनके बस की बात नहीं। समस्या नाटकों का कथोपकथन यथार्थवादी होता है। वार्तालाप को अलंकृत करने की शैली नहीं होती, सरल कथन का महत्व है। रसात्मकता और काव्यात्मकता के स्थान में तार्किक और व्यंग्यात्मक प्रवृत्ति मिलती है। जीवन की सर्वसामान्य संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने में जनसाधारण की बोलचाल की भाषा ही सक्षम है। यही यथार्थवादी रंगमंच की पहली ज़रूरत थी। समसामयिक समस्याओं को तीष्णता से प्रस्तुत करने केलिए काव्य और संगीत की भाषा पर्याप्त नहीं है। ऐसी भाषा जीवन के यथार्थ परिवेश के साथ मेल नहीं हो पाती। युग जीवन की विभीषिकाओं के प्रति दर्शक को अवगत कराना समस्या नाटककार का लक्ष्य रहा।

---

१. नाटक की साहित्यिक संरचना, गोविन्द चातक - पृ. १२५

स्वगत कथन और गीत आदि को भी समस्या नाटककारों ने छोड दिया। संघर्ष के मौकों पर लंबा स्वागत भाषण और गीत सहज नहीं लगेगा। अतः उन्होंने उसका तिरस्कार किया। गीतों का न होना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उपयुक्त ही लगता है। हिन्दी और मलयालम के समस्या नाटककारों की स्पष्ट राय यह है नाटकों में गीतों का अनावश्य समावेश घटनाओं की गंभीरता नष्ट करने के साथ-साथ अस्वाभाविक भी लगने लगता है।

भावुकता के विरुद्ध प्रतिक्रिया का दावा करनेवाला लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों के संवाद तार्किक शैली के होने के कारण नीरस बन जाता है। आदर्शों को भर देने की कोशिश में सहजता नष्ट हो जाती है। लंबे वाक्यों की प्रस्तुति मंच पर भाषण जैसा प्रतीत होता है। उदाहरण स्वरूप 'सन्यासी', 'मुक्ति का रहस्य' और 'राजयोग' के संवाद काफी लंबे है।

''जिस तरह भोजन या पानी बिना काम नहीं चल सकता ..... इस बुराई का जिसे लोग प्रेम कहते है।''[१]

अश्क को छोडकर अन्य समस्या नाटककारों की संवाद शैली प्रभावात्मक नहीं है। आदर्श का आरोप करने केलिए बनावटी बातों का बोलबाला हिन्दी समस्या नाटकों का दोष है। अश्क की शैली चुस्त एवं स्वाभाविक है। उदाहरण केलिए 'कैद' की अप्पी का यह कथन प्रस्तुत है।

---

१. सन्यासी, लक्ष्मीनारायण मिश्र - पृ. १६२

''कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है, जैसे मैं इस अंधकार के पर्दे को कभी चीर न सकूँगा, लेकिन फिर कितनी ही स्मृतियाँ अपनी जलती मशाल लिये आ जाती है।'[१]

मलयालम में एन. कृष्णपिल्लै की संवाद शैली बौद्धिकता की अधिकता के कारण कभी कभी बोझिल बन जाती है। तिक्कोडियन की शैली तो सरल एवं सशक्त है। भावनाओं का तीखापन वे व्यक्त करते है

''इस घर में माँ शब्द की एक व्याख्या की ज़रूरत पडती है। यहाँ सिर्फ मातृहीन सन्तान है और अपाहिज माँ है।'[२]

सी.एन. श्रीकण्ठननायर, टी.एन. गोपिनाथन नायर, के सुरेन्द्रन के.टी. मुहम्मद की संवाद योजना शैली भी सरल एवं स्वाभाविक है। एन.एन. पिल्लै ने तीखे व्यंग्यात्मक शैली को अपनाया। सी. एन. श्रीकण्ठन नायर के 'घाटे का सौदा' नाटक में नारी के स्वतंत्र एवं क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का परिचय दिलानेवाला कथापकथन मिलते है। उन्होंने सशक्त एवं मार्मिक संवादों से कथा को विकसित किया। प्रस्तुत नाटक में शारदा का कथन है

'दांपत्य, मधुविधु और पारिवारिक सुख, हाय! कितने अच्छे शब्द! अम्मिणी यह घोखा है, परंपराओं से होनेवाली घोखा।'[३] शारदा के नये

---

१. कैद और उडान, उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. ९०

२. तिक्कोडियन के नाटक - पृ. ४७३

३. घाटे का सौदा, सी.एन. श्रीकण्ठननायर पृ. ८२

आदर्शों को व्यक्त करने वाला कथोपकथन है यह। टी.एन. गोपिनाथन नायर ने पात्रों की मानसिक एवं चारित्रिक विशेषताओं को व्यक्त करनेवाले प्रभावशाली कथोपकथन प्रस्तुत किया। 'फूलवाली' नाटक में अम्मिणी का कथन है - 'उन आंखों केलिए, मैं ने भीख माँगी, कई कुकर्म किए, उनकेलिए मेरी इज़्ज़त और आबरू का मोलतोल हो गया। भूल मेरी नहीं। इसके मूल में पुरुष की काम का खेल है'[१]

एन.एन. पिल्लै ने तीखे व्यंग्यात्मक कथोपकथन के माध्यम से सामाजिक अनीतियों का पर्दाफाश किया। 'कापालिका' नाटक में कापालिका का कथन है-

'शादी एक बिज़िनस काण्ड्राक्ट है। उसके गोडौण का जीर्ण माल है पातिव्रत्य'[२]

के.टी. मुहम्मद के नाटकों के संवाद में सामाजिकता एवं मानवीयता का स्वर गूँजता है। 'काफर' का कथोपकथन है -

इस्लाम धर्म के प्रचारक बनकर इस दुनिया में ही वे नरक की सृष्टि करते है। यह दुनिया जीने की जगह है। उनकी ज़िन्दगी इस्लाम के उसूलों के अनुसार नहीं। दिया होते हुए भी उसे न जलाकर वे अन्धेरे में जीनेवाले है।'[३]

---

१. फूलवाली, टी.एन. गोपिनाथननायर - पु. २९
२. कापालिका एन.एन. पिल्लै पृ. ७१
३. काफर, के.टी. मुहम्मद - पृ. ६२

हिन्दी समस्या नाटकों के कथोपकथन की अपेक्षा मलयालम नाटकों के कथोपकथन अधिक प्रभावशाली लगता है। अश्क को छोडकर अन्य समस्या नाटककारों ने आदर्शों से भरकर संवादों की रचना की है। मलयालम नाटककारों ने सरल एवं मार्मिक ढंग से समस्याओं की प्रस्तुति एवं चरित्र चित्रण के माध्यम के रूप में संवादों को रूपायित किया।

हिन्दी समस्या नाटकों की अपेक्षा (उपेन्द्रनाथ अश्क के नाटकों को छोडकर) मलयालम के समस्या नाटकों के कथोपकथन प्रभावपूर्ण दीख पडते हैं। अधिकांश संवाद लंबे नहीं, छोटे है।

किन्तु जहाँ भावना अधिक उग्र हो गयी है वहाँ वे लंबे हो गए हैं। तीक्ष्ण नाटकीय व्यंग्य का सुन्दर ढंग से प्रयोग भी मलयालम समस्या नाटकों की संवाद योजना की अपनी खासियत है।

भाषिक संरचना

काव्यात्मक भाषा का तिरस्कार करते हुए समस्या नाटकों में प्रौढ एवं परिष्कृत भाषा का प्रयोग किया। वह तो साधारण बोलचाल की भाषा थी। नाटककारों की मान्यता थी कि सामाजिक परिवेश तथा ज़िन्दगी के यथार्थ का चित्रण करने केलिए सरल भाषा की ही ज़रूरत थी।

हिन्दी और मलयालम के समस्या नाटककारों ने प्रौढ एवं बोधगम्य भाषा का प्रयोग किया है। अध्ययन की सुविधा केलिए भाषा संरचना को चार भागों में विभक्त कर सकता है। प्रौढ़ एवं परिष्कृत भाषा बौद्धिक तथा भावुक व्यंग्यात्मक भाषा, पात्रानुकूल भाषा।

प्रौढ़ संस्कृत भाषा

आधुनिक शिक्षित एवं सुसंस्कृत समाज की भाषा सरल होती है, बल्कि परिष्कृत भी। आज के पाठक और दर्शक, नाटक में स्वाभाविक भाषा की अपेक्षा रखते है। भाषा के संबन्ध में लक्ष्मीनारायण मिश्र ने कहा है - 'जिस स्वाभाविकता के साथ हम अपने घर में रहते है, उसी स्वाभाविकता के साथ हमें रंगमंच पर रहना है... कला का काम है जीवन को जगा देना। इस कारण इस युग में रंगमंच की स्वाभाविकता पर बहुत ध्यान दिया जाने लगा है।'[१]

मिश्रजी ने अपने नाटकों में सरल, बोधगम्य भाषा का प्रयोग किया। बौद्धिकता पर आधारित प्रौढ भाषा का प्रयोग भी खूब मिलते है। जैसे 'सन्यासी' नाटक में मालती का कथन है - 'यह एक रोग है, किसी को ज़्यादा खोने का रोग होता है, किसी को ज्यादा पानी पीने का और किसी को जवानी की इस बुराई का, जिसे लोग प्रेम कहते है।'[२] प्रेम की यह व्याख्या बुद्धिवादी नारी की है। इसके साथ साथ भावुकता और रोमांस की प्रतिक्रिया का दावा करनेवाले मिश्र ने 'सिन्दूर की होली' में बुद्धिवादी नारी की भावुकता को यों प्रस्तुत किया है। मनोरमा का कथन

'इसलिए कि वह तूलिका होती है उसके भीतर शरद की चाँदनी होती है, वसन्त का पवन होता है... ग्रीष्म का अनुताप होता है।'[३]

---

१. मुक्ति का रहस्य की भूमिका मिश्र - पृ. २४
२. सन्यासी, मिश्र - पृ. १७२
३. सिन्दूर की होली, मिश्र - पृ. ४३

उपेन्द्रनाथ अश्क ने भी अपने नाटकों में प्रौढ एवं परिष्कृत भाषा का प्रयोग किया है। भावनाओं को व्यक्त करने में अश्क की भाषा अधिक प्रभावशाली है। 'भंवर' में ज्ञान का कथन है।

'आदमी अपने प्रेमी के साथ अपनी यौन भावना को तृप्त नहीं कर पाता है और ज़िन्दगी भर उसी अतृप्ति की आग में जलता रहता है। समझता है कि उसे अपने प्रिय से अमर अनन्त कभी न कम होने वाला, न मरनेवाला पवित्र प्रेम प्राप्त है।'[१] अश्क की बोधगम्य भाषा का एक और प्रमाण है 'कैद' में दिलीप का विचार 'यह' तन जीवन की बेडियों से जकडा है। इन जंजीरों का कहीं अन्त नहीं, एक बेडी से निकलकर दूसरी में और दूसरी से निकलकर तीसरी में फँसना अनिवार्य है। अनदेखी, अनजानी बेडियाँ सदा आत्मा को, शरीर, को सुन्दरता को जीवन को जकडे रहती है।'[२] उदयशंकर भट्ट के वाक्यों में भी परिष्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है।

पृथ्वीनाथ शर्मा, सेठ गोविन्ददास, विनोद रस्तोगी और रमेश मेहता ने भी समस्या नाटकों के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया। पृथ्वीनाथ शर्मा की स्वाभाविक भाषा का उदाहरण देखिए 'दुविधा' में सुधा कहती है- 'मेरी अन्तरात्मा मुझे कह रही है कि मेरे लिए यहाँ विवाह करना ठीक न होगा। यह विवाह करके मैं सुखी न रह सकूँगी, इसलिए द्विविधा

---

१. भँवर, उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. ७१

२. कैद और उडान, अश्क - पृ. ७३

में पडी हैं। सोचती हूँ मेरी अन्तरात्मा की इस चेतावनी की अवहेलना कर दूँ।'[१] रमेश मेहता का मार्मिक भाषा का प्रमाण यह है -

'रोटी और बेटी' में रामस्वरूप का कथन - 'मैं शास्त्रों को बहुत अच्छी तरह समझता है। हीरानन्द आप लोगों को चिन्ता करने की कोई ज़रूरत नहीं, लेकिन एक बात बता देना चाहता हूँ। समय के अनुसार जो समाज बदलता नहीं, वह जिन्दा भी नहीं रह सकता।'[२]

मलयालम समस्या नाटककारों ने भी अलंकृत एवं काव्यात्मक भाषा को छोडकर समस्या नाटकों के अनुकूल बोद्धिक तथा स्वाभाविक भाषा का प्रयोग किया। तिक्कोडियन के नाटक से एक उदाहरण प्रस्तुत है। 'ज़िन्दगी' में राधा कहती है 'वेणु, प्रेम का नाम रटने से कोई फायदा नहीं, मुझ जैसी एक अनाथ युवती, प्रेम में विश्वास नहीं कर सकती।'[३] के.टी. मुहम्मद ने भी सरल भाषा में प्रभावशाली ढंग से भावनाओं को प्रस्तुत किया 'दूध न देनेवाली गाय' में भास्करन का कथन है

'पहले काबिल बनो, फिर ख्वाहिश करो... मृत्यु तुम्हारे सिरहाने बैठी हुई है, अब इन्तज़ार करने से क्या फायदा'[४]

---

१. द्विविधा पृथिनाथ शर्मा - पृ. २७
२. रोटी और बेटी, रमेश मेहता - पृ. ७६
३. तिक्कोडियन के नाटक - पृ. ६९
४. दूधन देनेवाली गाय पृ. २४

व्यंग्यात्मक भाषा

उपेन्द्रनाथ अश्क ने मनोवैज्ञानिक धरातल पर भाषा का प्रयोग किया है। 'कैद' नाटक की अप्पी का कथन हैं 'आज़ादी की आग में जलकर कुन्दन बन गए तुम और न टूटने वाली बेडियाँ मेरे पाँवों में बँधती चली गयी।' .....'हम गरीबों का क्या है, माता-पिता ने जहाँ बिठा दिया, जा बैठी। मैं यहाँ आकर सब कविताएँ भूल गयी'[१] 'उडान' में भी व्यंग्य के ज़रिए भावनाओं को प्रस्तुत किया है। शंकर कहता है 'शिकार की धुन मेरी नसों में उबलती हुई आग बन रही है। अपनी बाहों में किसी भूली भटकी हिरनी को भर लेने की इच्छा तेज़ शराब के पहले खूट की तरह मेरी धमनियों में दौड रही है।'[२] विनोद रस्तोगी ने भी व्यंग्यात्मक भाषा के माध्यम से नाटक को प्रभावशाली बनाया है। 'नये हाथ' के व्यंग्य-विनोद-पूर्ण भाषा का उदाहरण है महेन्द्रपाल का कथन।

'जब आपने बचाने की ज़रूरत नहीं समझी तो मुझे मारने की क्या ज़रूरत है? मैं शिकारी हूँ और सच्चा शिकारी कभी उस शिकार को नहीं मारता जो स्वयं अपनी जान देने पर तुला हो और यह सिद्धान्त मैं जीवन के हर क्षेत्र में मानता हूँ।'[३]

---

१. कैद, अश्क - पृ. ६४, ६९, ७१

२. उडान, अश्क - पृ. ११३

३. कापालिका, एन.एन.पिल्लै - पृ. ४१

मलयालम में एन.एन. पिल्लै ने व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग प्रभावशाली रूप में किया है। प्रेम विवाह, पातिव्रत्य, प्रतिष्ठा, मर्यादा, सामाजिक नीति आदि सभी बातों पर उन्होंने व्यंग्य किया है। उनकी व्यंग्यात्मक भाषा पर अश्लीलता का आरोप भी हुआ है। 'कापालिका' नाटक में वेश्या कापालिका के घर में जब स्वामिजी आता है तो वह उसे अपनी वेश्यावृत्ति की ओर संकेत देते हुए कहती है-

'जहाँ कुन्ती देवी और पांचाली ने खतम किया वहाँ से मैं ने शुरू की... मैं ने कर्मयोग का मार्ग स्वीकार किया है।'[१] एन.एन. पिल्लै के 'डाम नाटक' में भी व्यंग्यपूर्ण भाषा का प्रयोग हुआ है। सी.एन. श्रीकण्ठननायर के 'घाटे का सौदा' में शारदा का कथन है -

'यह हमारा बच्चा नहीं, मेरा बच्चा है, इस सौदे में मेरा यही लाभ है..... वह सिर्फ मेरे घराने का गौरव नहीं, आपका भी यह फरा मानव वर्ग का'[२]

पात्रानुकूल भाषा

समस्या नाटकों के अधिकांश पात्र शिक्षित एवं संस्कृत है, अतः उनकी भाषा भी उसी तरह का है। अंग्रेज़ी का प्रयोग करनेवाले पात्र समस्या नाटकों में है। उदाहरण स्वरूप मिश्रजी के 'सन्यासी' की मालती का कथन है -

---

१. कापालिका, एन.एन. पिल्लै पृ. ४१

२. घाटे का सौदा, सी.एन. - पृ. १३०,१३१

'लाइल ईस ए स्टेज। मेटाफिसिक्स इज़ अउट, आफ कार्स'[१]

सेठ गोविन्ददास, उपेद्रनाथ अश्क आदि नाटककारों ने भी अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया है। अनपढ एवं नौकर लोगों की भाषा में गँवारू भाषा का प्रयोग भी हिन्दी नाटककारों ने किया है।

मलयालम समस्या नाटककारों नेभी पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। शिक्षित पात्र है तो अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग, नौकर है तो गँवारू शब्दों का प्रयोग आदि।

यथार्थवादी रंगमंच

रंगमंच नाटक के आधारभूत तत्त्वों में एक है, क्योंकि रंगमंच के बिना नाटक की प्रस्तुति असंभव है। नाटक साहित्य की उन्नति केलिए नाटकों का मंचीकरण अनिवार्य है।

हिन्दी में आधुनिक रंगमंच का आरंभ भारतेन्दु युग से शुरू होता है। भारतेन्दु और प्रसाद युग के ऐतिहासिक एवं पौराणिक नाटकों की प्रस्तुति केलिए संकीर्ण रंगमंच की ज़रूरत थी। किन्तु समस्या नाटक यथार्थ पर आधारित है। अतः साधारण जीवन से संबन्ध रखनेवाला रंगमंच काफी है। नित्यप्रति के जीवन में उपयुक्त सामग्रियों का उपयोग

---

१. सन्यासी, मिश्र - पृ. ५७

इसमें होता है। पात्रों को देश काल एवं कथा के अनुकूल वेषभूषाओं से प्रस्तुत करना भी चाहिए।

जन साधारण की जीवन परिस्थितियों के अनुकूल रंगसज्जा ही समस्या नाटक की विशेषता है। समस्या नाटक में कोई राजमहल का महत्व नहीं है अतः उस तरीके की रंगमंचीय सुविधाओं की आवस्यकता भी नहीं। उनमें तो पात्र प्रायः सामान्य व्यक्ति है। या तो सरकारी कर्मचारी, या एक साधारण गृहस्थ। उनकी वेष-भूषा भी सामान्य जीवन के अनुकूल होनी चाहिए। इसलिए समस्या नाटकों में राजाओं जैसे चमकनेवाले कपडे और अन्य सामग्रियों का उपयोग नहीं होता।

हिन्दी और मलयालमे समस्या नाटककारों ने इन्हीं बातों पर ध्यान दिया है और यथार्थवादी रंगमंच बनाये रखने में सफल निकले है।

समस्या नाटकों की रंगमंचीयता

रंगमंच के संबन्ध में मिश्रजी लिखते है कि बार बार पर्दा उठाना और गिराना रंगमंच को अस्वाभाविक बना देता है। रंगमंच का संगठन ऐसा होना चाहिए कि दर्शाकों को ऐसा न मालूम हो कि हम किसी अजनबी जगह में या किसी जादूघर से आ गये है। .....रंगमंच और हमारे स्वाभाविक जीवन में कोई विशेष अन्तर व्यक्त नहीं होना चाहिए।'[१] मिश्रजी ने अपने नाटकों को अधिक स्वाभाविक बनाने का प्रयास किया है। नाटकों प्रत्येक अंक के पूर्व विस्तृत रंग संकेत प्रस्तुत

---

१. मुक्ति का रहस्य की भमिका, मिश्र - पृ.२४

किया है। उनमें रंगसज्जा, पात्रों की भाव भंगिमा वेष-भूषा तथा पात्रों के प्रवेश प्रस्थान की सूचना प्राप्त है। अंकों की संख्या कम है। फिर भी 'सन्यासी' और 'राक्षस का मन्दिर' में दृश्य परिवर्तन शीघ्रता से होने के कारण डॉ. नगेन्द्र ने उन को रंगमच की दृष्टि से असफल कहा है।[१] 'राक्षस का मन्दिर' नाटक में तो आलिंगन, चुंबन आदि की अधिकता है, जिसका रंगमंच पर सीधा प्रदर्शन अनुचित है। मिश्रजी की कथोपकथन शैली कहीं कहीं विरस और काफी लंबे हो जाने के कारण उनकी मंचीय सफलता कभी असंभव सा लगता है। साथ ही स्त्री-पुरुष संबन्धों के विश्लेषण जैसे विस्फोटक विषय पर लिखा गया नाटक दकियानूसी शिक्षण संस्थाओ द्वारा भी नहीं खेले गये।'[२]

उपेन्द्रनाथ अश्क के प्रायः सभी नाटक रंगमंच की दृष्टि से सफल है। वे एक उत्कृष्ट नाटककार होने के साथ एक सफल अभिनेता और निर्देशक भी रहे है।[३] अंक और दृश्यविधान यथार्थवादी नाट्य शिल्प के अनुरूप हुए है। स्वाभाविक शैली से कार्यव्यापार का प्रवाह नष्ट न होनेवाली प्रस्तुति उनके नाटकों की विशेषता है। प्रायः सभी नाटकों में संपूर्ण कार्यव्यापार एक ही कमरे में संपन्न होते है। रंगसज्जा भी साधारण-सा है। 'छठा-बेटा' के अन्तिम स्वप्न दृश्य को प्रभावशाली बनाने केलिए नाटककार ने उचित रंगनिर्देश दिया है। पात्रों के रूप स्वभाव आदि का

---

१. आधुनिक हिन्दी नाटक, डॉ. नगेन्द्र - पृ. ५६

२. प्रसादोत्तर नाट्य साहित्य, डॉ. विजय बापट पृ. १०५

३. हिन्दी नाटकों की शिल्प विधि का विकास, शान्ति मलिक - पृ. ४१८

भी संकेत उन्होंने दिया है। उनके नाटक कई बार अभिनीत हो चुके है। 'छठा बेटा' और 'स्वर्ग की झलक' का मंचन १९४९ में शिमला के कालीबाडी हॉल में सफलतापूर्वक हुए। 'छठा बेटा' का अभिनय इकाहाबाद ग्वालियर तथा नागपूर आदि में किया गया है। 'अलग-अलग रास्ते' का प्रदर्शन इलाहाबाद के पैलेस थियटर में 'ईप्टा' द्वारा बडी सफलता से खेला गया।'[१] अशक ने हिन्दी नाटक और रंगमंच को नया मोड दिया। उन्होंने नाटक को मंच और आधुनिक यथार्थ के साथ जोडा। मंच के प्रति सतर्क रहने के कारण उनकी भाषा रोमांटिक हो कर यथार्थ सापेक्ष है।[२]

उदयशंकर भट्ट के नाटक अभिनय, संकेत, रंगमंच की आवश्यक सामग्री, पात्रों की वेषभूषा आदि के विवरण से युक्त होने के कारण अभिनेय है। सेठ गोविन्ददास और पृथ्वीनाथशर्मा के नाटक भी अभिनय की दृष्टि से सफल है। 'सेवापथ' का मंचन उनके ही निर्देशन में हुआ है। विनोद रस्तोगी ने तो रंगमंचीय प्रस्तुति के बाद ही अपने नाटकों का प्रकाशन किया। अतः उनके नाटक मंचीय त्रुटियों से मुक्त है।[३] 'नया हाथ' अभिनेयता की दृष्टि से पूर्णतः सफल है क्योंकि रंगसंकेत और प्रभावशाली साज-सज्जा का उचित निर्देशन उसमें किया गया है।

मलयालम के सर्वप्रथम समस्या नाटक 'उजडा घर' (एन. कृष्णपिल्लै) इब्सन के शिल्प संकेत में लिखा गया है। रंगनिर्देश उचित

---

१. नाटककार अश्क, जगदीशचन्द्र माधुर - पृ ५४

२. हिन्दी नाटक प्राकथन और दिशाएँ, डॉ विजयकान्त धरदुबे - पृ. ५१

३. नाटक और यथार्थ वाद कमलिनी मेहता - पृ. २९२

रूप में दिया गया है। इसके कई बार मंचन हुए है। १९४२ में तिरुवनन्तपुरम में इसकी पहली प्रस्तुति हुई। फिर एरणाकुलम में, और के पी.ए.सी ने तोप्पिल भासी के निर्देशन में भी इसका मंचन किया (१९८६) वैचारिकता की अधिकता के कारण कृष्णपिल्लै के नाटक साधारण प्रेक्षक की रुचि के अनुकूल नहीं होते है। 'कन्यका', 'बलपरीक्षा' आदि उनके अन्य नाटक भी अंक और पात्रों की सीमित संख्या के कारण मंचीय दृष्टि से प्रभावशाली है।

संकलनत्रय

समय स्थान और कार्य की एकता निभाने में प्रायः सभी नाटककारों ने सफलता पायी है। उपेन्द्रनाथ अश्क के 'अंजो दीदी' और मलयालम में तिक्कोडियन के 'चिनगारी' आदि नाटकों में लंबी अवधी की घटनाओं की प्रस्तुति हुई है। उन्होंने रंगसज्जाओं में होनेवाले बदलाव के ज़रिए उस काल विशेष को व्यक्त किया है। जैसे 'अंजो दीदी' में घडी के माध्यम से और 'चिनगारी' में सुसज्जित कमरे की अव्यवस्था के माध्यम से लंबी अवधी का आभास देता है। हिन्दी और मलयालम के प्रायः सभी समस्या नाटकों में घटनाएं सिर्फ एक ही स्थान में घटती है। उदाहरणार्थ मिश्रजी के 'सिन्दूर की होली' में सभी अंक मुरारीलाल के घर में होते है और राजयोग की घटनाएं शत्रुसूदन के घर में होती है। मलयालम में कृष्णपिल्लै के 'बलपरीक्षा' और 'कन्यका' की सभी घटनाएँ एक ही घर में होती है। तिक्कोडियन, के.टी. मुहम्मद, के. सुरेन्द्रन, सी.एन., टी.एन.

आदि नाटकारों ने भी स्थान और कार्य की एकता पर ध्यान दिया है। प्रायः सभी नाटकों में समय की एकता भी बनायी है। छोटी अवधि पर ज़्यादातर नाटकों में कार्यव्यपार होते है। तिक्कोडियन के 'एक परिवार' एन.एन. पिल्लै के 'कापालिका' जैसे नाटकों में समय की लंबी अवधि को सूच्य दृश्य, रंगनिर्देश और अन्य संकेतों के माध्यम से निपटाया है।

दोनों भाषाओं के नाटकों के शिल्पगत अध्ययन के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि समस्या नाटककारों ने पूर्ववर्ती नाट्य परंपरा से बिलकुल भिन्न प्रतिमान अपनाये हैं। स्वातंत्र्योत्तर विशेषकर साठोत्तरी नाटकों का शिल्प विधान इसकी ही अगली कडी है।

पाँचवाँ अध्याय

हिन्दी और मलयालम के समस्या नाटक -एक नवीन नाट्य विधा के तौर पर उपलब्धियाँ और सीमाएँ

अध्याय ५
हिन्दी और मलयालम के समस्या नाटक - उपलब्धियाँ और सीमाएँ

बीसवीं शताब्दी में उत्तरोत्तर बढते हुए पाश्चात्य संपर्क के कारण भारत के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक क्षेत्रों में गहरा परिवर्तन आया। पश्चिम की उदारवादी प्रजातांत्रिक एवं व्यक्तिवादी विचारधाराओं से हमारे शिक्षित नवयुवक प्रभावित हुए। डारविन, त्राथड तथा मार्क्स के विचार एवं आद्रशों ने भारत के सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन में भी प्रभाव डाल दिया। इसके कारण जीवन में जो विघटनकारी स्थितियाँ उत्पन्न हुई, उन्हें समस्या नाटककारें ने अपना विषय बनाया।

समस्या नाटक के आविर्भाव के पहले हिन्दी नाट्य जगत में पारसी रंगमंच के व्यावसायिक नाटक, भारतेन्दुकालीन अव्यावसायिक रंगमंच के नाटक और प्रसाद युग की स्वच्छन्दतावादी नाट्य धारा प्रचलित थे। भारतेन्दु के 'भारतदूर्दशा' और 'अन्धेरनगरी' जैसे प्रहसन नये नाट्यप्रयोग थे। किन्तु बौद्धिकता और मनोवैज्ञानिकता का अभाव उस युग की कमी रही। फिर भी दशरथ ओझा के मत में विषय की प्रासंगिकता एवं सामाजिकता के कारण भारतेन्दुयुग के कुछ कुछ नाटकों

को समस्या नाटक मान सकता है।[१] प्रसाद युगीन नाटकों की अतिरंजित भावुकता, कल्पना विलास, घटनाओं का कृत्रिम वर्णन, चरित्र सृष्टि की अस्वाभाविकता एवं अवास्तविकता, अलंकृत भाषा, गीत और स्वगत कथन इन सबके प्रति समस्या नाटककारों ने प्रतिक्रिया व्यक्त की।

पूर्ववर्ती नाट्यपरंपरा की भावुकता और आदर्श के स्थान पर यथार्थवादी और बुद्धिवादी दृष्टिकोण का सहारा लेकर जिन्दगी के विभिन्न पहलुओं का चित्रण प्रस्तुत करना समस्या नाटकों की पहली प्रवृत्ति रही। भारतीय समस्या नाटक पाश्चात्य 'प्रोब्लम प्ले' से अवश्य प्रभावित है। समस्या नाटकों का घरातल बौद्धिक होने के कारण उनमें भावनाओं की अपेक्षा विचार प्रमुख रहता है। अतः समस्या नाटककारों ने मनोरंजकता को नहीं बौद्धिकता एवं मनोवैज्ञानिकता को महत्व दिया। समस्या नाटकों ने समसामयिक एवं सर्वसाधारण जीवन की समस्याओं को प्रस्तुत करते हुए उनको सुलझाने का उपाय भी बुद्धिवादी धरातल पर किया।

समस्या नाटककारों ने भारतीय विचारधारा और पश्चिमी चिन्तन का समन्वय करके एक नवीन नाट्य धारा को जन्म दिया। पश्चिम में शेक्सपियर के रोमानी नाटकों की प्रतिक्रिया स्वरूप इब्सन और बरनाडशाँ ने समकालीन समस्याओं से जुडे यथार्थवादी तथा भावुकता के विरोधी

---

१. हिन्दी नाटक उद्भव और विकास दशरथ ओझा - पृ. १६४

बुद्धिप्रधान नाट्य धारा की शुरुआत की। हिन्दी के प्रथम समस्या नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र ने जयशंकर प्रसाद के नाटकों की भावुकता और रूमानियत का तीखा खण्डन किया। पश्चिमी नाटककारों ने भावुकता और कल्पना के चित्रण के स्थान पर यथार्थ और वास्तविकता का चित्रण किया। उन्होंने सामाजिक कुरीतियों पर गहरी चोट पहुँचा दी। हिन्दी और मलयालम के समस्या नाटकों में भी ऐसी सामाजिक समस्याओं को लेकर विचार विमर्श हुए।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने इस ओर अपना मत व्यक्त किया है कि बुद्धिवाद तीक्ष्ण सत्य है। ''संसार की समस्याएँ..... जिनकेलिए आजकल इतना शोर मचा हुआ है, तराजू के पलडे पर नहीं सुलझाई जा सकती... वे पैदा हुई बुद्धि से और उनका उत्तर भी बुद्धिवाद से मिलेगा।''[१] मिश्रजी अपने नाटकों में पाश्चात्य सभ्यता और आदर्श का प्रभाव ज़रूर दिखाते हैं। मगर मिश्रजी भारतीय प्राचीन आदर्शों के प्रति आस्था छोड न सका। उन्होंने कहा है - ''संपूर्ण उपनिषद साहित्य और वेदान्त साहित्य बुद्धिवाद पर अवलंबित है।''[२]

मलयालम के सर्वप्रथम समस्या नाटककार एन. कृष्णपिल्लै भी पाश्चात्य प्रभाव से मुक्त नहीं। उन पर इब्सन की नाट्य परिकल्पना का स्पष्ट प्रभाव है। उन्होंने कहा भी है कि किसी गंभीर और मौलिक

---

१. सिन्दूर की होली - पृ. ४९

२. मुक्ति का रहस्य की भूमिका - पृ. १३-१४

समस्या का बारीकी से विश्लेषण करके एक नवीन नाट्य रूप का उद्‌घाटन करने में इब्सन के नाटकों से प्रेरणा मिली है।[१]

सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक रूढ़ियों में सुधार की आवश्यकता पर भारतेन्दु और प्रसाद काल के नाटककारों ने ध्यान दिया था। परन्तु व्यक्ति की समस्याओं पर सबसे पहले समस्या नाटककारों ने ही बल दिया। इन्होंने उसकेलिए तर्क और बुद्धि को अस्त्र बनाया और तत्कालीन ज़िन्दगी का यथार्थ चित्रण को महत्व दिया।

समस्या नाटककार जानते हैं कि आधुनिक काल में इतिहास के गडे मुर्दे उखाडने से कोई काम नहीं।[२] समस्या की गहराई तक जाने की कोशिश नाटककार करते हैं। इस कोशिश में कुछ नाटककार सफल हुए, और अन्य कुछ नाटककारों को पूर्ण सफलता नहीं मिली। बच्चन सिंह ने लिखा है कि मिश्रजी भीतर से भावुक और बाहर से बुद्धिवादी है। भारतीयता के प्रति उनकी आस्था में भी विचित्र भावुकता का सन्निवेश हो गया है।[३] उपेन्द्रनाथ अश्क ने रोमान्टिक अभिव्यक्तियों से बचकर यथार्थ सापेक्ष भाषा के माध्यम से समस्या नाटक के क्षेत्र में सफलता पायी। ''यथार्थवादी चित्रण, सामाजिक व्यंग्य और ईमानदाराना अभिव्यक्ति दृष्टि से वे बेजोड है।''[४]

---

१. कैरली की कहानी एन. कृष्णपिल्लै - पृ. २५५-२५६

२. सन्यासी की भूमिका लक्ष्मीनारायण मिश्र

३. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास बच्चन सिंह पृ. २१४

४. आलोचना जनवरी १९६६ - पृ. ३०

हिन्दी के अन्य समस्या नाटककारों में से विनोद रस्तोगी ने भी तत्कालीन समाज की ज्वलन्त समस्या के चित्रण में सफलता पायी है।

मलयालम में तिक्कोडियन और एन.एन. पिल्लै सामाजिक समस्याओं के यथार्थ चित्रण मैं सफल हुए हैं। निम्न मध्यवर्गीय आदमी की ज़िन्दगी के गहरे एवं तीव्र क्षणों को तीखी भावनाओं के साथ अभिव्यक्त करने में तिक्कोडियन अद्वितीय है।[१]

एन.एन. पिल्लै एक ऐसा नाटककार है जिसने ज़िन्दगी को नाटक बनाया, और नाटक को ज़िन्दगी बनाया।[२] उनके नाटकों की व्यग्यात्मक शैली पर हम नाज़ कर सकते है। खोखली सामाजिक व्यवस्था पर करारी चोट करनेवाली उनकी नाट्यरचनाओं में व्यंग्य का जितना पैना रूप है उतना किसी भी अन्य समस्यानाटकों में नहीं है। उन्होंने तटस्थ होकर सामाजिक विकृतियों, सांस्कृतिक विसंगतियों और मानवीय दुर्बलताओं पर चोट की।

समस्या नाटककारों ने नाट्यकला की प्राचीन पद्धति का तिरस्कारकिया जिसमें काल्पनिक चित्रण, अलंकृत भाषा, संगीत, स्वगत आदि का महत्व था। समस्या नाटक की भाषा सरल और स्वाभाविक है। स्वाभाविकता का आग्रह समस्या नाटकों की सर्वप्रमुख विशेषता है। समस्या नाटककारों ने अंकों की संख्या कम कर दी, दृश्यपरिवर्तन भी

---

१. केली दिसंबर २००० - जनवरि २००० पृ. ४३

२. केली (डी.सी. किषक्केमुरी) ९५ दिसं - ९६ जनवरी - पृ. ५६

कम हुए। रंग-संकेत एवं साज-सज्जा का कुशल निर्देशन भी उनकी विशेषता है। हिन्दी के प्रायः सभी समस्या नाटककारों ने इस नवीन शिल्पविधि का पालन सफलतापूर्णक किया है। किन्तु मलयालम के समस्या नाटकों में अंकों की संख्या क्रम नहीं है। फिर भी समस्या नाटक संबन्धी अन्य विशेषताएँ उन्हें प्राप्त है। यों नाट्य जगत में एक नवीन शिल्पविधि का उद्घाटन करना समस्या नाटकों की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

हिन्दी और मलयालम के समस्या नाटककारों ने नाटक साहित्य को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया। हिन्दी समस्या नाटक, प्राक् स्वातंत्र्ताकालीन याने भारतेन्दु तथा प्रसादयुगीन और स्वातंत्र्योत्तर नाटकों के बीच की महत्वपूर्ण कड़ी है। व्यक्तित्व की नयी अवधारणा पारिवारिक विघटन, नारी व्यक्तित्व की स्वतंत्रता, रूढ़ियों का खण्डन, नयी पुरानी पीढी का संघर्ष, संबन्धों का विश्लेषण, मध्यवर्गीय जीवन में मूल्यों के बदलते परिवेश आदि समस्या नाटककारों के विषय बने। परवर्ती नाटककार जैसे मोहन राकेश, लक्ष्मीनारायण लाल, सुरेन्द्रवर्मा आदि के नाटकों में हुए यथार्थ की खोज का पथ-प्रदर्शन वास्तव में समस्या नाटककारों ने किया। मलयालम में भी समस्या नाटककारों ने नाटक को नवीन जीवनदृष्टि देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी हैं। संगीत नाटकों और प्रहसनों से ऊबनेवाले पाठक या दर्शकों के सामने ज़िन्दगी का यथार्थ चित्रण समस्या नाटककारों ने प्रस्तुत किया।

अश्क को छोडकर हिन्दी के अन्य समस्या नाटकक
और शॉ के प्रभाव से उद्‌भूत अपने बुद्धिवाद का प्रचार
अतः नाटक के रूपबन्ध शिथिल हो गये। मलयालम न
अपने सिद्धान्त को कथा और पात्रों पर आरोपित करने क
की। यथार्थ की खेज में हिन्दी में उपेन्द्रनाथ अश्क ही स
अतः अश्क के नाटकों को हिन्दी नाट्यकला के विकास
चिह्न माना गया है और वे यथार्थवादी शैली के जौहरी है
अन्य समस्या नाटककार असफल सिद्ध हुए जबकि म
निम्नमध्यवर्गीय जीवन के तमाम अन्तर्विरोधों की अभिव्य
मलयालम समस्या नाटककार सफल निकले है।

प्रसाद की रोमांटिक भावुकता की प्रतिक्रिया का दा
समस्या नाटक भी कहीं कहीं भावुकता से बचनहीं पाये मि
नाटकों में भावुकता की अधिकता है। लंबे संवादों के जरिए
आदर्श का उद्‌घाटन करना कभी कभी अस्वाभाविक लगत
का आरोप था कि जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटकों में आत
चित्रण किया है जो भारतीय आदर्शों के विरुद्ध है। किन्त
समस्या नाटकों में समस्याओं का समाधान आत्महत्या
कोशिश है। जैसे 'आधीरात', (मिश्रजी), 'अंजोदीदी' (अश
(उदयशंकर भट्‌ट) 'उजडा घर', 'समझौता' (एन. कृष्णपिल्लै

---

१. नाटककार अश्क जगदीश चन्द्रमाथुर - पृ. ३८-३९

'एक परिवार' (तिक्कोडियन) 'वह फल मत खाओ' (सि.एन. श्रीकण्ठननायर) 'कांच का बर्तन' (के. सुरेन्द्रन) आदि। यह समाधान बुद्धिवादी नहीं, पलायन वादी है। समस्या नाटकों की यह पलायनवादी वृत्ति, उनके एक कमज़ोर पहलू है और ज़िन्दगी के प्रति नाटककारों के नकारात्मक रुख को प्रकट करती है।

अधिकांश समस्या नाटकों के पात्र अनिश्चयता की द्विविधा की स्थिति में फँसे दीखते हैं। उनके पात्र समस्याओं से स्वयं नहीं जुझते हैं। बल्कि नाटककार उसको विवश कर देते हैं। भारतीय समस्या नाटककारों ने पाश्चात्य नाटककारों के समान समस्याओं को रंगमंचीय सन्दर्भ दे नहीं सके। उनके दृश्य विधान और रंगविधान भी दिखावे का है।[१]

समस्या नाटक सामाजिक समस्याओं का उल्लेख करते हैं, फिर भी अधिकांश समस्या नाटकों में वैयक्तिकता का स्वर मुखर है। जैसे 'मुक्ति का रहस्य', 'राजयोग', 'आधीरात', 'सिन्दूर की होली' (मिश्र) 'स्वर्ग की झलक', 'भंवर', 'उडान' (अश्क) 'सिद्धान्त स्वातंत्र्य' (सेठ गोविन्ददास), 'उजडा घर', 'कन्यका', 'पूँजी', 'घटे का दिया', 'मरीचिका' (एन. कृष्णपिल्लै), 'बेप्रसूत माँ', 'चिनगारी' (तिक्कोडियन) 'घाटे का चौदा' (सि.एन.) आदि नाटक। नाटक तो जनता की वस्तु है। अतः उसमें सामाजिकता मुखर होनी चाहिए। वह यदि अपने किसी संवोदनों

---

१. आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच लक्ष्मीनारायण लाल - पृ. ९२

को प्रकाशित करता हुआ, समष्टी - संवेदनों का गहरा स्पर्श नहीं करता तो, नाट्यकला की दृष्टि से लोकप्रियता प्राप्त नहीं कर सकता।[१] अतः समस्या नाटक इस आधार पर सफल नहीं है।

समस्या नाटकों में निराशा और अनिश्चयता का स्वर गूँजता है। कटु वास्तविकताओं का वर्णन कभी कभी कुरुचिपूर्ण होते हैं और वे आदर्शों की अराजकता भी उत्पन्न करते हैं। डॉ. दशरथ ओझा की राय में ''यथार्थवादी नाटक का लक्ष्य समस्याओं को उभारकर जनता के हृदय में असन्तोष उत्पन्न करना रहा है।''[२] गहरी या मूलभूत मानवीय अनुभूतियों के अन्वेषण में वे असफल सिद्ध होते हैं।

---

१. आलोचना नाटक विशेषांक जुलाई १९५६ पृ. १९

२. हिन्दी नाटक उद्‌भव और विकास दशरथ ओझा - पृ. ९२

मूलग्रन्थ

हिन्दी

१. आधीरात -- लक्ष्मीनारायण मिश्र - हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,वारणासी,द्वितीय सं.-१९५७

२. मुक्ति का रहस्य - लक्ष्मीनारायण मिश्र - हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,वारणासी, प्रथम १९४४

३.राजयोग - लक्ष्मीनारायण मिश्र - भारतीभण्डार प्रयाग प्रथम १९३४

४.राक्षस का मन्दिर - लक्ष्मीनारायण मिश्र - हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,वारणासी तृ.सं. १९५८

५. सन्यासी -- लक्ष्मीनारायण मिश्र - हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,वारणासी तृ.सं. १९६१

६. सिन्दूर की होली - लक्ष्मीनारायण मिश्र - भारती भण्डार १२ सं १९३४

७. अलग अलग रास्ते -- उपेन्द्र नाथ अश्क , नीलाभ प्रकाशन इलाहाबाद , प्र.सं. १९५४

८. अंजोदीदी - उपेन्द्रनाथ अश्क ,नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद प्र,सं. १९५४

९. छठा बेटा - उपेन्द्रनाथ अश्क ,नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद छठा ,सं. १९६१

१०. कैद और उडान - उपेन्द्रनाथ अश्क ,नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद द्वितीय सं १९५५

११. भँवर - उपेन्द्रनाथ अश्क ,नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद प्र,सं. १९६१

१२.स्वर्ग की झलक - उपेन्द्रनाथ अश्क ,नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद पँचवा,सं. १९५६

१३. सेवा पथ - सेठ गोविन्द दास , हिन्दी भवन, इलाहाबाद प्र,सं, १९४०

१४. सिद्धान्त स्वातंत्र्य - सेठ गोविन्द दास , भारतीय विश्व प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं १९५८

१५. प्रकाश - सेठ गोविन्द दास ,भारतीय विश्व प्रकाशन, दिल्ली , प्र.सं १९५८

१६. दुविधा - पृथ्वीनाथ शर्मा हिन्दी भवन, इलाहाबाद प्र.सं.१९५७

१७. साध - पृथ्वीनाथ शर्मा हिन्दी भवन, इलाहाबाद प्र.सं.१९५७

१८. नया समाज - उदयशंकर भट्ट, आत्मा राम एण्ड सन्स , दिल्ली द्वितीय सं १९६३

१९. कमला - उदयशंकर भट्ट, आत्मा राम एण्ड सन्स , दिल्ली द्वितीय सं १९६३

२०. नये हाथ - विनोद रस्तोगी, आत्मा राम एण्ड सन्स , दिल्ली द्वितीय सं १९६७

२१. रोटी और बेटी - रमेश मेह्ता

मलयालम

१. अडुक्कलयिल निन्नु अरंङत्तेक्कु - वी.टी.भट्टतिरिप्पाडु , डी.सी.बुक्स , कोट्टयम २०००

२. मरकुडक्कुल्लिले महानरकम - एम.आर.बी . जी.शंकरप्पिल्लै स्मारक नाटक पठन केन्द्रम , त्रिशूर , सं १९९७

३. ऋतुमती - प्रेमजी

४. एन.कृष्ण पिल्लयुडे नाटकङल - एन. कृष्णपिल्लै , साहित्य प्रवर्तका सहकरण संघ कोट्टयम , प्रं.सं. १९६७

५. तिक्कोडियन्टे नाटकङल - तिक्कोडियन , मातृभूमि, सं. १९८५

६. नष्टक्कच्चवटम - सि.एन. श्रीकण्ठननायर , एम. एस.बुक्स , कोषिक्कोड , द्वितीय सं. १९५८

७. आ कनि तिन्नरुत - सि.एन. श्रीकण्ठननायर , एम. एस.बुक्स , कोषिक्कोड ,प्रथम.सं. १९५९

८. परिवर्तन - टि.एन .गोपिनाथन नायर ,साहित्य प्रवर्तका सहकरण संघ कोट्टयम द्वितीय सं. १९५१

९. पूक्कारी - टि.एन .गोपिनाथन नायर, एस. आर . प्रस ट्रिवान्ड्रम, प्रथम , १९४४

१०. काफर - के.टी. मुहम्मद , करण्ट बुक्स , त्रिशूर , द्वितीय सं., १९६६

११. इतु भूमियाण - के.टी. मुहम्मद

१२. करवट्ट पशु - के.टी. मुहम्मद, करण्ट बुक्स ,त्रिशूर, तृ.सं.१९५८

१३. बली - के.सुरेन्द्रन

१४. पलुंकुपात्रम - के.सुरेन्द्रन, इन्डया प्रस, कोट्टयम

१५. डाम - एन.एन. पिल्लै, करण्ट बुक्स सं. २०००

१६. कापालिका - एन.एन. पिल्लै, करण्ट बुक्स सं. २०००

१७. क्रोस बेल्ट - एन.एन. पिल्लै, करण्ट बुक्स , सं. २०००

आलोचनात्मक ग्रन्थ

१. आधुनिक भारतीय रंग परिदृश्य - जयदेव तनेजा , तक्षशिला प्रकाशन , सं १९९२
२. आधुनिक हिन्दी नाटक - डॉ.नगेन्द्र , साहित्य रत्न भंण्डार आगरा , द्वितीय सं. १९४७
३. आधुनिक हिन्दी नाटक - डॉ. गिरीश रस्तोगी ग्रन्थम रामबाग कानपूर -१२ प्र.सं. १९६८
४. आधुनिक हिन्दी नाटक - गोविन्द चातक , तक्षशिला प्रकाशन अनसारी रोड, नई दिल्ली , प्र.सं. १९८२
५. आधुनिक हिन्दी नाटक एक यात्रा दशक - नरनारायण राय , भारती भाषा प्रकाशन विश्वास नगर , शाहदरा , दिल्ली - ३२ प्र.सं १९७९
६. आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमच - डॉ.लक्ष्मीनारायणलाल साहित्य भवन , इलाहाबाद प्र.सं. १९८९
७. आधुनिक हिन्दी नाटक भाषिक और संवादीय संरचना - गोविन्द चातक , तक्षशिला प्रकाशन , नई दिल्ली प्र. सं. १९८२
८. आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन - डॉ. गणेश दत्त गौड प्रकाश चन्द्र जैसवाल सरस्वति पुस्तक सदन आगरा , प्र.सं. १९६५
९. आधुनिक हिन्दी सहित्य का इतिहास - बच्चन सिंह , लोकभारती प्रकाशन , इलाहाबाद परिवर्दधित सं १९५६
१०. इनसानियत की नसीहत - डॉ. पि.ए.शमीम अलियार , सूर्य भारती प्रकाशन दिल्ली, प्र. सं. १९९९
११. तुलनात्मक साहित्य - संप. डॉ. नगेन्द्र , नशेनल पम्लिषिङ हाऊस , नई दिल्ली , प्र. सं १९८३
१२. तुलनात्मक अध्ययन स्वरूप और समस्याएँ - संपा. डॉ. राजूरकर, एओस. पी. राजमलबोरा , वाणी प्रकाशन , नई दिल्ली , प्र. सं. १९७०
१३. नाटक और यथार्थवाद - कमलिनी मेहता , नागरी प्रचारणी सभा , वारणासी
१४. नाटक और रगंमंच - राजकुमार , ओम प्रकाश बेरी , हिन्दी प्रचारक पुस्ताकलय , पिशाचमोचन , वारणासी, प्र.सं १९६१
१५. नाटककार अश्क - जगदीश चन्द्र माथुर , नीलाभ प्रकाशन , इलाहाबाद
१६. नाटककार सेठ गोविन्ददास - सावित्री शुक्ल , लखनाऊ विश्वविद्यालय,प्र.सं.१९५८

१७. नाटक तथा रंग परिकल्पना - गिरीश रस्तोगी विश्वविद्यालय प्रकाशन , वारणासी
१८. नाटक के तत्व सिद्धात और समीक्षा - विष्णु कुमार त्रिपाठी , रकेश स्मृति प्रकाशन , इलाहाबाद , प्र. सं. १९७३
१९. नाटक की साहित्यिक संरचना - गोविन्द चातक , तक्षशिला प्रकाशन , नई दिल्ली सं १९९४
२०. नाटक की परख - एन.एस. वी खत्री , साहित्य भवन, इलाहाबाद तृ.सं. १९५६
२१. नाटक के तत्व (मनोवैज्ञानिक अध्ययन) - कमलिनी मेहत्ता , नागरी प्रचारणी सभा, वारणासी प्र. सं. १९६३
२२. नाट्य प्रस्तुति एक परिचय - रमेश राजहंस , राधाकृष्ण प्रकाशन , नई दिल्ली प्र. सं. १९८७
२३. प्रसादोत्तर नाट्य साहित्य - डॉ. विजय बत्र, म. प्र हिन्दी साहित्य अकादमी भोपाल, प्र. सं. १९७७
२४ भारतीय भाषाओं का नाट्य साहित्य - डॉ. शांति मलिक , नेशनल पब्लिषिङ हाउस , नई दिल्ली , प्र.सं. १९९३
२५. मलयालम के प्रतिनिधी नाटक - अनु.एम.एस. विश्वंभरन , लोकभारती प्रकाशन , इलाहाबाद , सं १९९५
२६. रंगपरंपरा - नेमी चन्द्र जैन , वाणी प्रकाशन , नई दिल्ली , सं १९९६
२७. लक्ष्मी नारायण मिश्र के नाटकों में नारी पात्र - त्यागी जगदीश , कुमार प्रकाशन , मोती नगर, नई दिल्ली, प्र.सं., १९७६
२८. विनोद रस्तोगी की नाट्य साधना - डॉ.विनोद पटेल, बाबु भाई , एच.शाह पार्श्व प्रकाशन, अहमदाबाद , प्र.सं. १९९२
२९. हिन्दी और मलयालम के नाटक तुलनात्मक अध्ययन - एन.ऐ. नारायणन ,कुंजबिहारी लालपचौरी , जवाहर पुस्तकालय , मथुरा , प्र.सं. १९७२
३०. हिन्दी का आधुनिक साहित्य - सत्यकाम वामी गौरीशंकर वर्मा , मैनेजर भारती. सहित्य मंदिर , दिल्ली, प्रथम १९६२
३१. हिन्दी के समस्या नाटक - डा. मान्धाता ओझा , नेशनल पब्लिषिङ हाऊस नई दिल्ली, प्र.सं.१९६८
३२. हिन्दी के समस्या नाटक - उमाशंकर सिंह, ऊर्जा प्रकाशन , इलाहाबाद , प्र.सं १९७८
३३. हिन्दी नाटक - बच्चन सिंह , राधाकृष्ण प्रकाशन , नई दिल्ली
३४. हिन्दी नाटककार - जयनाथ नलिन आत्माराम एण्ड सण्स , दिल्ली
३५. हिन्दी नाटक उद्‌भव और विकास - दशरथ ओझा , हिन्दी अनुसंधान परिषद , दिल्ली विश्वविद्यालय के तत्वावधान में प्रकाशित

३६. हिन्दी नाटक प्राकथन और दिशाएँ - डॉ.विजय कान्तदर दुब्बे , अनुभव प्रकाशन , कानपूर , प्र.सं. १९५६

३७. हिन्दी नाट्य प्रयोग के सन्दर्भ में - डॉ. सुषमा बेदी पराग प्रकाशन , दिल्ली , प्र.सं. १९८४

३८. हिन्दी नाटक सिद्धांत और विवेचन - सं महेन्द्र , साहित्य रत्न भण्डार , आगरा प्रथम १९६७

३९. हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि - गिरिजा सिंह , लोकभारती प्रकाशन , इलाहाबाद प्रथम १९७०

४०. हिन्दी नाटको की शिल्पविधि का विकास - डा. शांति मल्लिक, नेशनल पब्लिषिङ हाउस , दिल्ली , १९७१

४१. हिन्दी नाटकों में पात्र कल्पना और चरित्र चित्रण - सूरज कान्त शर्मा , एम.ई.एस बुक कम्पनी , दिल्ली, प्र. सं. १९७३

४२. हिन्दी तथा बंगला नाटको का तुलनात्मक अध्ययन - डॉ.रमासेन गुप्ता

४३. हिन्दी नाट्य समालोचन - मान्धाता ओझा , राजपाल एण्ड सण्स,. दिल्ली, १९७६

४४. हिन्दी नाटकों का रूपविधान और वस्तुविकास - डॉ.चन्दुलाल दुब्बे

४५. हिन्दी नाटक की भूमिका मध्यवर्ग के सन्दर्भ में - डॉ. मूलचन्द गौतम , जागृती प्रकाशन , अलीगर

४६. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - बच्चन सिंह , राधाकृष्ण प्रकाशन,१९९६

मलयालम

(१) अरंगिन्टे अर्थतलङ्गल - डॉ. वयला वासुदेवन पिल्लै
करन्ट बुक्स - १९९८

(२) इब्सन्टे नाटक संकल्पम् - जी. शंकरपिल्लै
केरल भाषा इंस्टिट्यूट
तिरुवनन्तपुरम
द्वि.सं. १९९०

(३) इब्सन्टे लोकत्तिलूडे - पी.जे. थॉमस
नेशनल बुक स्टाल
कोट्टयम् - २०००

(४) कालघट्टत्तिन्टे साहित्यम् - साहित्य प्रवर्तक सहकरण संघं - कोट्टयम् १९८०

(५) आधुनिक नाटक वेदो - एम.एम. वर्की – के आर. वारियर

(६) कैरलियुटे कथा - एन कृष्णपिल्लै
साहित्य प्रवर्तक सहकरण संघ कोट्टयम
चोथा संस्करण १९८२

(७) तारतम्य साहित्य पीठिका - सं. ए.एन.पी. उम्मरकुट्टि केरल भाषा इंस्टिट्यूट
प्रथम १९९८

(८) तारतम्य साहित्यम् तत्ववुम् - प्रसक्तियुं - प्रो. पी.ओ. पुरुषोत्तमन्
केरल भाषा इंस्टिट्यूट प्र. १९८८

(९) तारतम्य साहित्य समीक्षा - डॉ. जी.जी. रामचन्द्र पिल्लै
डी. पत्मकुमारी १९८७

(१०)तिक्कोडियन - प्रो.एम.के. सानू
नेशनल बुक स्टॉल कोट्टयम २०००

(११)तेरञ्जेटूत्त प्रबन्धङ्ल - एन. कृष्णपिल्लै
नशन बुकस्टॉल प्रथम १९७१

(१२)नाटकत्तिन्टे काणाप्पुरङ्ल् - सी.एन् जॉय
डी.सी. बुक्स
कोट्टयम १९९६

(१३) नाटक दर्शनम् - जी. शङ्करपिल्लै

(१४) नाटक दर्शनम् - ए.पी.पी. नम्बूतिरी

(१५) नाटकम सृष्टियुम साक्षात्कारवुं - डॉ आर.बी. राजलक्ष्मी
प्रभात बुक हाउस
तिरुवनन्तपुरम
प्रथम २००१

(१६) प्रिय स्मरणकल् - एन कृष्णपिल्लै
डी.सी. बुक्स, कोट्टयम्
प्रथम १९८९

(१७) मलयाल नाटकङलिलूटे - काट्टुमाडम नारायणन

(१८) मलयाल नाटक प्रस्थानम् - काट्टुमाडन नारायणन
केरल साहित्य अक्कादमि तृश्शूर

(१९) मलयाल नाटक सर्वश्व - मडवूर भासी
चैतन्या पब्लिकेशन्स
तिरुवनन्तपुरम
प्रथम १९९०

(२०) मलयाल साहित्यम् अरुपतुकलिल - डॉ मावेलिक्करा अच्चुतन
सं. १९८४

(२१) मलयाल साहित्यम् स्वातंत्र्य लब्धिक्कुशेषम् - ए.आर. चन्द्रशेखरन
साहित्यप्रवर्तक सहकरण संघं
कोट्टयम
सं. १९९९

(२२) वी.टी. इविडेयुन्टु - ओलीव पब्लिकेशन्स १९९९

(२३) विश्वनाटक शिल्पिकल - जी गंगाधरन नायर
थियेटर बुक्स् तिरुवनन्तपुरम सं १९९९

[redacted] - साहित्य प्रवर्तक सहकरण संघं कोट्टयम १९८९
[redacted]
डी.सी. बुक्स सं-१९९९

(२६) साहित्य चरित्रं प्रस्थानङलिलूडे - डॉ. के.एम. जार्ज

पत्र - पत्रिकाएँ

१. आलोचना - जुलाई - सितंबर १९६९
२. आलोचना - जुलाई - सितंबर २००१
३. आलोचना - नाटकविशेषांक
४. साहित्यमण्डल पत्रिका - जनवरी मार्च १९९६
६. साहित्यमण्डल पत्रिका - अप्रैल मई १९९६
६. केली - दिसंबर - १९९५ - जनवरी १९९६
[redacted]केली - दिसंबर २००० जनवरी २००१
८. देशाभि[redacted]
९. मातृभूमि - आगस्त १९९८
१०. भाषा साहिति - अप्रैल - जून १९८३
११. भाषा साहिती - जुलाई - सितंबर १९८३

G18588

English Books

1. Ibsen , The Critical Heritage - Ed. Michel Egan , Routtedge & Kegan Paul Ltd. Boston , U.S.A , 1972

2.Merriam Webster's Encyclopedia of Literature

3. Natuarils'm - Lilian.R.Furst & PeterN.Skrine, Cox & Wyman Ltd. Fakenham , Norfolle , Great Britain, 1971

4. Realism - Damian Grant , Cox & Wyman Ltd. Fakenham , Norfolle , Great Britain, 1970

5. World Drama - Allardyle Nicoll George.G. Harrap & Co. Ltd London, 1949

6. World Literature - Buckner B.T.Travic Barnes Noble Inc, New York 1967, 2nd ed.